❀ श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

सर्वे पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन-कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष १ | गौराब्द ४६९, मास—श्रीधर २९, वार—अनिरुद्ध बुधवार, २० श्रावण पूर्णिमा, सम्वत् २०१२, ३ अगस्त १९५५ | संख्या ३

गुर्व्वष्टक

(श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती-ठाकुर-कृत)

संसार-दावानल-लीढ़-लोक-
त्राणाय कारुण्यघनाघनत्वम् ।
प्राप्तस्य कल्याण-गुणार्णवस्य,
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥१॥

महाप्रभोः कीर्त्तन-नृत्य-गीत-
वादित्रमाद्यन्मनसो रसेन ।
रोमाञ्च-कम्पाश्रु-तरङ्ग-भाजो,
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥२॥

संसार-दावानलसे सन्तप्त लोगोंकी रक्षाके लिए जो करुणाके घने मेघ स्वरूप होकर कृपावारि वर्षण करते हैं, मैं उन्हीं कल्याण-गुणनिधि श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी वन्दना करता हूँ ॥१॥

संकीर्त्तन, नृत्य, गीत तथा वाद्यादिके द्वारा उन्मत्तचित्त श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमरसमें जिनके रोमाञ्च, कम्प और अश्रुतरंग उद्गत होते हैं, मैं उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी वंदना करता हूँ ॥२॥

श्रीविग्रहाराधन-नित्य-नाना-
शृङ्गार-तन्मन्दिर-मार्ज्जनादौ ।
युक्तस्य भक्तांश्च नियुञ्जतोऽपि
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥३॥

जो श्रीभगवद्विग्रहकी नित्य-सेवा, शृङ्गाररसोद्दीपक तरह-तरहकी वेश रचना और श्रीमन्दिरके मार्जन आदि सेवाओंमें स्वयं नियुक्त रहते हैं तथा (अनुगत) भक्तजनको नियुक्त करते हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेवके पाद-पद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ ॥३॥

चतुर्व्विध--श्रीभगवत्प्रसाद
स्वाद्वन्नतृप्तान् हरिभक्तसङ्घान् ।
कृत्वैव तृप्तिं भजतः सदैव
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥४॥

जो श्रीकृष्णभक्त-वृन्दको चर्व्य, चुष्य लेह्य और पेय—इन चतुर्विध रस-समन्वित सुस्वादु प्रसादान्न द्वारा परितृप्त कर (अर्थात् प्रसाद-सेवनके द्वारा प्रपञ्च-नाश और प्रेमानन्दका उदय करवा कर) स्वयं तृप्ति लाभ करते हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ ॥४॥

श्रीराधिकामाधवयोरपार-
माधुर्य्य-लीला-गुण-रूप-नाम्नम् ।
प्रतिक्षण-स्वादन-लोलुपस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥५॥

जो राधामाधवके अनन्त-माधुर्यमय नाम, रूप, गुण और लीला-समूहका आस्वादन करनेके लिए सर्वदा लुब्धचित्त हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ ॥५॥

निकुञ्जयूनो रतिकेलिसिद्ध्यै
या यालिभिर्युक्तिरपेक्षणीया ।
तत्रातिदाक्ष्यादतिवल्लभस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥६॥

निकुञ्ज विहारी 'व्रज-युव-द्वन्द्वके' रतिक्रीड़ा-साधन के निमित्त सखियाँ जो जो युक्ति अवलम्बन करती हैं, उस विषयमें अति निपुण होनेके कारण जो उनके अतिशय प्रिय हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ ॥६॥

साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै-
रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः ।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥७॥

निखिल शास्त्रोंने जिनका साक्षात् हरिके अभिन्न-विग्रहरूपसे गान किया है एवं साधुजन भी जिनकी उसी प्रकारसे चिन्ता किया करते हैं, तथापि जो—प्रभुभगवान्‌के एकान्त प्रिय हैं, उन्हीं (भगवान्‌के अचिन्त्य-भेदाभेद-प्रकाश-विग्रह) श्रीगुरुदेवके पाद-पद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ ॥७॥

यस्य प्रसादाद्भगवत्प्रसादो
यस्याप्रसादान्नगतिः कुतोऽपि ।
ध्यायंस्तुवंस्तस्य यशस्त्रिसन्ध्यं
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥८॥

एकमात्र जिनकी कृपाद्वारा ही भगवद्-अनुग्रह लाभ होता है, जिनके अप्रसन्न होनेसे जीवोंका कहीं भी निस्तार नहीं है, मैं त्रिसंध्या उन्हीं श्रीगुरुदेवका कीर्त्ति-समूह स्तव और ध्यान करते-करते उनके पाद-पद्मोंकी वन्दना करता हूँ ॥८॥

श्रीमद्गुरोरष्टकमेतदुच्चै-
र्ब्राह्मे मुहूर्त्ते पठति प्रयत्नात् ।
यस्तेन वृन्दावन-नाथ-साक्षात्-
सेवैव लभ्या जनुषोऽन्त एव ॥९॥

जो व्यक्ति इस गुरुदेवाष्टकका ब्राह्म-मुहूर्त्तमें (अरुणोदयसे चार दण्ड पहले) अतिशय यत्नके साथ उच्चस्वरसे पाठ करते हैं, वे वस्तु-सिद्धिके समय वृन्दावनचन्द्रका सेवाधिकार प्राप्त करते हैं ॥९॥

श्रीभक्ति-मार्ग

[पूर्व प्रकाशित वर्ष १, संख्या २, पृष्ठ ३१ से आगे]

वैधी भक्तिका साधन और परिचय

जिनका नैसर्गिक सम्बंधज्ञान उदय नहीं हुआ है वे भगवत् प्रिय वस्तुका अलौकिक सौन्दर्य पहले पहल देख नहीं पाते। अतः उनके लिए विधि-मार्गमें शास्त्रीय विचार और गुरुके उपदेश आवश्यक हैं। जो शास्त्र वाक्योंपर श्रद्धाके साथ विश्वास कर गुरुके निकट भजन-शिक्षा करते हैं और भजनके प्रभावसे अनर्थोंके हाथसे परित्राण लाभ करते हैं, उनके साधन-भक्तिके कालमें ही निष्ठा नामक एक अवस्था परिलक्षित होती है, उसीसे रुचि उत्पन्न होती है। विधिके अनुगत होकर भजन करनेके लिए श्रीरूप गोस्वामीपादने अपने उपदेशामृतमें कहा है—

"स्यात् कृष्णनामचरितादि सिताप्यविद्या,
पित्तोपतप्तरसनस्य न रोचिका नु।
किन्त्वादरादनुदिनं खलु सैव जुष्टा,
स्वाद्वी क्रमाद्भवति तद्गदमूलहन्त्री ॥
(उपदेशामृत ७)

अर्थात्—अहो! जिनकी जिह्वाका स्वाद पित्तके दोषसे बिगड़ा हुआ है अर्थात् जो अनादि कालसे कृष्ण-विमुख होनेके कारण अविद्या ग्रस्त हैं, उन्हें कृष्ण-नाम, गुण एवं उनकी लीला आदिका गानरूप सुमधुर मिश्री भी मीठी नहीं लगती। किन्तु यदि आदरके साथ अर्थात् श्रद्धायुक्त होकर उसी कृष्ण-नाम-चरितादिरूप मिश्रीका निरंतर सेवन किया जाय तो क्रमशः निश्चय ही उसका आस्वादन उत्तरोत्तर बढ़ता जायगा और कृष्ण-विमुखतारूप जड़-भोग व्याधिका (पित्त रोग की तरह) समूल नाश हो जावेगा।

रागानुगा भक्तिका कपट—अनुकरण अपराधमय है

रुचिका उदय हुआ हो, साथ ही साथ प्रवृत्ति रूप अनर्थ भी प्रबल हो ऐसी घटना निष्कपटता अथवा निर्व्यलीकत्वका बाधक है। इस प्रसंगमें श्रीमद्भागवत का निम्नलिखित श्लोक उल्लेखनीय है—

"येषां स एव भगवान् दययेदनन्तः,
सर्वात्मनाश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम्।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां,
नैषां ममाहमिति-धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥*
(भा० २।७।८२)

चैतन्यचन्द्रोदय नाटकमें कहा गया है—

"बाह्याभ्यन्तरयोः समं बत कदा वीक्ष्यामहे वैष्णवान्।"

जिनकी रुचि कृत्रिम होती है वे शीघ्र ही विषयों में फँस जाते हैं। तब वे अपराधको ही वैष्णव-कृत्य जान कर रागानुग बाह्य-साधन श्रवण-कीर्त्तनका आश्रय कर अपनी भक्तिलताको अपराध द्वारा उखाड़ फेंकते हैं जिससे वह सूख जाती है। सुतरां अन्तश्चिन्तित उनकी सिद्ध-देह उस समय कृष्ण सेवाके बदले कृष्णसे अतिरिक्त वस्तुका अनुशीलन करने लगती है, तब वैष्णव-विद्वेष करते-करते जीव अतिवाड़िओं* की तरह श्रीगुरु-पाद-पद्ममें अपराध कर बैठते हैं। वे शास्त्रोंकी अवज्ञा कर उच्छृंखल हो रागानुगा भक्तिकी आड़में वैधी-भक्तिकी निंदा करते हैं। इस विषयमें शास्त्रका स्पष्ट निर्देश है—

"श्रुति स्मृतिपुराणादि पञ्चरात्र विधिं विना।
आत्यन्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव केवलम् ॥"

साधन-भक्ति—वैधी और रागानुगा

साधन-भक्तिमें वैधी और रागानुगा—ये दोनों

---

*भावार्थ—भगवान् श्रीअनन्त देव जिनपर कृपा करते हैं, वे यदि निष्कपट होकर सर्वतोभावेन कायमनोवाक्यसे उनके चरणोंमें शरणागत होजाँय तो भगवान्की दुस्तरा अलौकिकी मायाको पार कर सकते हैं। ऐसे शरणागत भक्तों का कुत्तों और शृगालोंके भक्ष्य इस देहमें "मैं और मेरा" बुद्धि नहीं रहती।

*उत्कल प्रदेशमें जगन्नाथ दास और रूप कविराजको तथा इनके अनुगत सम्प्रदायको अतिवाड़ी सम्प्रदाय कहते हैं। ये अपनेको श्रीमन्महाप्रभुका अनुगत सम्प्रदाय कहते हैं, किन्तु प्रकृत-प्रस्तावमें वे महाप्रभुके अनुगत गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायसे अलग एक नवीन पंथी हैं। ये प्रसाद-सेवाके समय अपना उच्छिष्ट प्रसाद स्वयं सर्व साधारणमें वितरण करनेके कारण अतिवाड़ी सम्प्रदाय या रूप कविराजवादी सम्प्रदायके नामसे ख्यात हैं।

ही मार्ग अवस्थित हैं। भाव उदय होने पर वैधी-भक्ति के अधिकारी भी रागानुगा-मार्गसे भजन करना आरंभ करते हैं। वैध-भक्त व्रजवासियोंके भावोंसे लुब्ध होनेके पहले शास्त्र और युक्तिकी अपेक्षा करते हैं। उनका संदेह दूर होनेपर विचार-प्रधान मार्गके सिद्धान्तमें अभिज्ञ होकर रुचि-प्रधान मार्ग में प्रवेश करते हैं। ऐसी अवस्था आनेके पहले ही कपटपूर्वक रुचि-प्रधान-पथमें अपनेको अवस्थित समझकर वैध-मार्ग स्थित भक्तोंके साथ यदि वे वितंडा में प्रवृत होते हैं तो ऐसे "रुचि-प्रधान" परिचयकी आकांक्षा करने वाले व्यक्तियोंके स्वरूपकी विभ्रान्ति हुई है--ऐसा समझना चाहिये। फिर रागानुग मार्गके रूपानुग आचार्य श्रीजीवपादके द्वारा रचित 'श्री भागवत-सन्दर्भके' सिद्धान्तोंसे विमुख होकर नाम-श्रवण और अनर्थ निवृतिके बाद क्रमशः रूप-श्रवण, गुण-श्रवण और लीला-श्रवणकी अवज्ञा होनेपर रागानुगा साधनका भी विरोध होना अवश्यम्भावी है। क्योंकि वाह्यतः हरि-कथा-श्रवण और कीर्त्तन दोनों ही रागानुग-मार्गमें अत्याज्य (न छोड़ने योग्य) कृत्य विशेष हैं।

साधन भक्तिका क्रम

श्रीजीवपादने लिखा है,—तदेवं नामादिश्रवण भक्त्यङ्गक्रमः। तथापि प्रथमं नाम्नः श्रवणम्, अन्तः-करणशुद्ध्यर्थमपेक्ष्यम्। शुद्धे चान्तःकरणे रूपश्रवणेन तदुभययोग्यता भवति। सम्यगुदिते च रूपे गुणानां स्फुरणं सम्पद्यते। ततस्तेषु नामरूपगुणेषु तत्परिकरेषु च सम्यक् स्फुरितेष्वेव लीलानां स्फुरणं सुष्ठु भवती-त्यभिप्रेत्य साधनक्रमो लिखितः। एवं कीर्त्तन-स्मरण योर्ज्ञेयम्। इदञ्च श्रवणं श्रीमन्मुखरितं चेन्ममाहात्म्यं जात रुचिनां परमसुखञ्च।

(श्रीभक्तिसंदर्भ-संख्या २५६)

अर्थात्—नाम-रूप-गुणादि श्रवण ही भक्ति-अंग-का क्रम है। तथापि अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए पहले-पहल नाम-श्रवण ही अपेक्षणीय होता है। अन्तः-करण शुद्ध होनेसे रूप-श्रवण के द्वारा हृदयमें रूप-का उदय होता है, इसके द्वारा गुण-समूहकी स्फूर्ति होती है। अनन्तर नाम, रूप, गुण और तदीय परिकर समूहकी भली-भाँति स्फूर्ति होनेपर सुष्ठु रूपसे लीला-समूहका स्फुरण होता रहता है। इसी अभिप्राय से ही साधनक्रम लिखा गया है। इसी प्रकार कीर्त्तन और स्मरणके विषयमें भी जानना चाहिये। यह श्रवण महाजन-मुखरित होनेपर महामाहात्म्य-युक्त एवं जात रुचि-व्यक्तियों के लिए परम सुखप्रद होता है।

नाम ग्रहणके द्वारा अपने सिद्ध परिचयका उदय

जो अनर्थ-युक्त जीवको जात-रुचि समझकर उन्हें कृष्ण-नाम-रूप-गुण-परिकर-वैशिष्ट्य-लीलायुक्त रसग्रन्थ श्रवण कराते हैं अथवा श्रवण करते हैं, उनकी यथेच्छाचारिता अवश्य ही विशृंखलता उत्पन्न करती है। कृष्ण-नाम करते-करते सिद्धान्त अवगत होनेपर शुद्ध-भक्त अपना परिचय अच्छी तरह जान सकते हैं। नाम-भजनमें नाम उच्चारणकारी अपने अनुकूल या प्रतिकूल विचारसे युक्त-वैराग्य-विशिष्ट गृहस्थ अथवा पारमहंस्य धर्म--इनमेंसे कोई एक को अपनी सुविधानुसार ग्रहण करेंगे। इसमें किसीको बाधा देना उचित नहीं। किन्तु फिर भी जड़-गृहमें आसक्ति अथवा स्त्रैण होना भक्तोंके लिए सुविधा-जनक नहीं और परमहंस होकर भी फल्गु (शुष्क) वैराग्यका आश्रय करनेसे भजनमें विघ्न पड़ता है।

--जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील प्रभुपाद

साधु-संग

मानवोंकी दो श्रेणियाँ

इस सुविस्तीर्ण भूमण्डलमें हम असंख्य मानवों को देखते हैं। साधारणतः हम उन्हें दो श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते है—(१)ईश्वर विमुख(२)ईश्वरोन्मुख उनमें ईश्वर-विमुख मानव प्रथम श्रेणीमें आते हैं। ये मायाद्वारा मुग्ध होकर "मैं और मेरा"के अभिमानमें मत्त हुए इस संसारमें भटकते हैं और उसकी घोर यंत्रणाओं की ज्वालामें दग्ध होते रहते हैं। इनमें कोई नैतिक, कोई कर्मी, कोई ज्ञानाभिमानी और अधिकांश स्वार्थपर विधि-विहीन अथवा उच्छृंखल होते हैं। द्वितीय श्रेणीके मानव ईश्वरके उन्मुख होते हैं। वे जगतमें रह कर भी ईश्वरका अनुग्रह लाभ करनेका प्रयत्न करते हैं। भिन्न-भिन्न साधनोंका अवलम्बन करनेसे उनमें भी विभिन्न श्रेणियाँ हो जातीं हैं। कोई कर्म-योगी—भगवदर्पित निष्काम कर्म करता है, कोई ज्ञानी—वैराग्यके साथ ईशध्यानादि क्रियाएँ करता है,कोई अष्टांगयोगी--आसन प्राणायामके साथ आत्मा और परमात्माका संयोग साधन करता है तथा कोई-कोई भक्त भी हैं, जो अपनी समस्त इन्द्रियोंके द्वारा अनुकूल भावसे श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं।

द्वितीय श्रेणीके मानवोंमें भक्तका श्रेष्ठत्व

अब द्वितीय श्रेणीके मानवोंमें ईश्वरका अनुग्रह पानेका कौन विशेष अधिकारी है, इस प्रश्नकी मीमांसा सर्वोपनिषद्सार श्रीमद्भगवत गीता में अति सुन्दर ढंग से की गयी है। शास्त्रों में सरल विश्वास रखने वाले श्रद्धालु व्यक्ति सहज ही में भक्तिकी श्रेष्ठता उपलब्धि कर सकते हैं, किन्तु शास्त्रीय वाक्योंमें संदिग्ध, तार्किक व्यक्ति तरह-तरहके तर्कोंकी अवतारणा करके भी इस विषयकी मीमांसा करनेमें असमर्थ रहता है। तार्किक मन सर्वदा अपने हृदय क्षेत्रको दूषित रखता है। कर्मी, ज्ञानी, योगी, भक्त आदिके तारतम्यमूलक विचारके स्थलमें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कह रहे हैं—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोधिकः।
कर्मिभ्यश्चधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥
(गीता ६।४६-४७)

तपस्वीकी अपेक्षा योगी श्रेष्ठ है, ज्ञान-योग अवलम्बन करने वालेकी अपेक्षा योगी श्रेष्ठ है। कर्म-योगीसे भी योगी अर्थात् अष्टांग-योगी श्रेष्ठ है। इसलिए हे अर्जुन, तुम योगी बनो। लेकिन यहींपर भगवान् अर्जुनको सावधान कर देते हैं। योगियों में कौन योगी सर्वोत्तम हैं तथा कौन योगी भगवान् को अतिशय प्रिय हैं—इस विषयमें किसीको भ्रम न हो इसलिए तुरन्त ही फिर कहने लगते हैं—जो लोग परम श्रद्धाके साथ अनन्य-चित्त होकर मेरा भजन करते हैं वे पूर्वोक्त सभी योगियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। क्योंकि श्रद्धालु साधक ही भक्त-योगी है और "भक्त्या-हमेकया ग्राह्य," एक मात्र भक्तिके द्वारा साधक मुझे जान सकता है।

प्रकृत साधु-संगके अभावसे कर्म ज्ञानादिकी सृष्टि

संसारमें प्रविष्ट होकर मानव देश-भेद और अवस्था-भेदसे संस्कार, शिक्षा और संगक्रमसे भिन्न-भिन्न प्रकृतियाँ धारण करता है। इसीलिए कोई या तो कर्म प्रिय, कोई ज्ञानी अथवा कोई भक्त हो जाता है। ईश्वर स्वरूपतः क्या वस्तु है, जीवका स्वरूप क्या है, माया-निर्मित यह जगत् क्या है, इनमें परस्पर क्या सम्बंध है, जीवका लक्ष्य क्या है और वह लक्ष्य सिद्धि किस उपायसे हो सकती है-इन संबंध, अभिधेय और प्रयोजन तत्त्वोंका विशुद्ध विचार तथा प्रकृत साधु संगका अभाव भी इन भिन्न-भिन्न भावोंके लिए प्रधान कारण हैं। वास्तव में परमेश्वर एक वस्तु हैं और जीव भी स्वरूपतः एक वस्तु है। यहाँ प्रत्येक मनुष्योंमें जो रुचिकी विलक्षणता देखी जाती है उसका कारण संस्कार, शिक्षा और संगफलके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। सर्व प्रकारकी उपाधियों

से सर्वथा मुक्त भगवत्तत्त्व ज्ञानी साधुओंके संग और उपदेशसे ही तत्त्व-ज्ञान मिलता है और ऐसे साधुओंकी कृपा-शक्तिसे ही वैसा तत्त्व-ज्ञान उपलब्ध किया जा सकता है। साधु-संग और साधुकृपा के बिना विशुद्ध तत्व-ज्ञान प्राप्त करनेके लिए कोई भी दूसरा तरीका नहीं है।

साधु संग ही भव-सागर पार होनेका एक-मात्र उपाय है

कुछ लोग ऐसे हैं जो ईश्वरका अनुग्रह तो पाना चाहते हैं तथा इसके लिए प्रयास भी करते हैं, किन्तु अपने कुसंस्कारके फेरसे हो अथवा अन्याय रूपसे आत्मनिर्भरताके वशमें ही होकर वे न तो साधु-संगकी कुछ आवश्यकता अनुभव करते है और न साधु-संग लाभ करनेके लिए कुछ प्रयत्न ही करते हैं। यह उनके माया द्वारा मुग्ध होनेकी पहिचान है। इसका कारण यह है कि संसार-समुद्र में डूबते हुए मानवके लिए साधु संग ही एकमात्र सहारा है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी दूसरा पथ नहीं। श्रीशंकराचार्यने कहा है—

"क्षणमपि सज्जन-संगतिरेका ।
भवति भवार्णव-तरणे नौका ॥"

भक्तोंके संगसे भक्ति लाभ

लेकिन खेदका विषय है कि ऐसे साधु संगमें भी उनकी प्रीति उत्पन्न नहीं होती। फिर यदि कोई साधु संगकी आवश्यकता वचनोंसे स्वीकार करता भी है तो उसका अन्तर उसे चाहता नहीं। यह उनके दुर्भाग्यका ही सूचक है। शास्त्रका कहना है—

भक्तिस्तु भगवद्भक्त संगेन परिजायते ।
सत्संगः प्राप्यते पुंभिः सुकृतैः पूर्व संचितैः ॥

(बृहन्नारदीय पुराण)

भक्तोंके संग क्रमसे ही भक्ति प्राप्त होती है। पूर्व-संचित अनेक सुकृतियोंके फलस्वरूप साधुओंका संग मिलता है। यद्यपि सुकृतिके अभावमें किसी को साधु संग मिलना असम्भव है। फिर भी व्याकुल होकर प्रयत्न करनेसे साधु संग दुर्लभ नहीं होता। इस जगत्में स्थान-स्थान पर साधु रहते हैं, प्रयत्न करनेसे उनका दर्शन मिल सकता है। लेकिन इसके लिए तो हार्दिक प्रयत्न चाहिए घरमें पैरों पर पैर रखे बैठे हुए 'साधु संग नहीं हुआ!' कह कर केवल पछताने से क्या होगा?

संसार प्रविष्ट जीवके लिए साधु-संग ही सुख-प्राप्तिका उपाय है

मानव इस मायिक जगत्में प्रवेश कर भूले हुए पथिककी तरह इधर-उधर भटक रहा है। किस रास्ते में चल कर सुख प्राप्त हो सकेगा, किस उपायका अवलम्बन करनेसे अभीष्ट सिद्ध होगा—इन चिन्ताओं से अस्थिर होकर कुछ भी स्थिर नहीं कर पाता है, किन्तु साधु-संग प्राप्त होनेके साथ-ही-साथ सभी संशय दूर हो जाते हैं और गन्तव्य-पथ सामने दीख पड़ता है—

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।
सत्संगमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते रतिः॥

(भा० १०।५१।५३)

[अर्थात् अपने स्वरूपमें सर्वदा स्थित रहने वाले (अच्युत) भगवन्! जीव अनादि कालसे जन्म-मृत्यु रूप संसारके चक्करमें भटक रहा है। जब उस चक्करसे छूटनेका समय आता है, तब उसे सत्संग प्राप्त होता है। यह निश्चय है कि जिस क्षण सत्सङ्ग प्राप्त होता है, उसी क्षण संतोंके आश्रय, कार्यकारण रूप जगत्के एक मात्र स्वामी आपमें उसकी दृढ़ भक्ति उत्पन्न होती है और उसीसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है।]

मायाके चक्करमें फँसनेके कारण जीवोंकी भगवद् बहिर्मुखता इतनी प्रबल हो गयी है कि विषयी-मानव एक क्षण भी विषय चिन्ता—विषयोंकी सेवा किए बिना रह नहीं सकता। अनेकों प्रयत्न करके भी उसे मायाके निकट मुँहकी खानी पड़ती है। लेकिन संतोंके मुख-विगलित हरि-गुण गानका श्रवण करनेसे शीघ्र ही मायाका बंधन खुल जाता है। श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

सतां प्रसंगान्मम वीर्य्यसंविदो,
भवन्ति हृत्कर्ण रसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्ग वर्त्मनि,
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥

(भा० ३।२५।२५)

[संतोंके यथार्थ संग में मेरे माहात्म्यको प्रकाश करने वाली शुद्ध हृदय और शुद्ध कर्णोंकी प्रीति उत्पादक जिन मधुर कथाओं की चर्चा होती है,उसे प्रीति के साथ श्रवण करते-करते शीघ्र ही अविद्या निवृत्ति के वर्त्मस्वरूप (पथ स्वरूप) मुझमें क्रमशः पहले श्रद्धा, पीछे रति और अन्त में प्रेम-भक्ति उदित होती है।]

निर्जनवाससे कृष्ण-भक्ति नहीं होती, वह साधु संगके सापेक्ष है

बहुतेरे ऐसा संदेह कर सकते हैं कि साधुसंग से भी भगवान्‌की कथाओंका श्रवण और कीर्त्तन ही तो होता है। फिर इसके लिए इतने कष्टकी आवश्यकता ही क्या है? उसे तो ग्रन्थोंमें पढ़कर या निर्जनमें बैठ कर भी किया जा सकता है। फिर साधु सङ्गकी आवश्यकता ही क्या है? और भक्ति का मिलना भी साधु सङ्गके सापेक्ष क्यों है? इन संशयों को दूर करनेके लिए श्रीचैतन्यदेवने कहा है,

"कृष्णभक्ति-जन्ममूल हय 'साधु संग'।
कृष्ण-प्रेमजन्मे तेँहो पुनः मुख्य अंग॥
महत्-कृपा विना कोन कर्मे 'भक्ति' नय।
कृष्ण भक्ति दूरे रहु संसार नहे क्षय॥
'साधु संग' 'साधु संग'—सर्व शास्त्रे कय।
लवमात्र साधु संगे सर्वसिद्धि हय॥

(चैतन्य चरितामृत मध्य २२।८३।५१, ५४)

—"अर्थात् साधुसंग यद्यपि पहलेही कृष्णभक्ति का जन्ममूल है तथापि कृष्णप्रेम उत्पन्न होनेपर भी वही साधुसङ्ग फिर प्रेमके मुख्य अङ्गमें परिगणित होता है। केवल कृष्णभक्तोंकी कृपा विना अप्राकृत कृष्णभक्ति उदय होने की सम्भावना नहीं; कृष्ण भक्ति तो दूर रहे, प्राकृत-बुद्धिरूप संसार तक भी क्षय नहीं हो सकता। साधुसङ्गकी महिमा सभी शास्त्रोंने गाई है। निमेष-काल मात्र साधुओंके सङ्गमें सर्व प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

महत् (साधु) कृपाके विना किसी भी कर्मसे भक्तिलाभ नहीं होती

साधुओंके सङ्ग और उनकी कृपाके अतिरिक्त किसी भी कर्मसे भक्ति लाभ नहीं होती है। क्षणभर के साधु-सङ्गसे भी उनकी कृपा प्राप्त कर सर्व सिद्धियोंके सार-भक्तिकी प्राप्ति हो सकती है। किन्तु साधु-कृपाके सिवा किसी भी अन्य उपायसे कुछ नहीं होनेका है। श्रीमद्भागवत परम भागवत जड़ भरत, रहूगणसे कह रहे हैं—

रहूगणैतत् तपसा न याति
न चेज्यया निर्व्वपणाद् गृहाद् वा।
न छन्दसा नैव जलाग्नि सूर्य्यैः,
विना महत्पाद रजोऽभिषेकम्॥

(भा० ५।१२।१२)

[रहूगण! महाभागवतोंके चरणोंकी धूलिसे आत्माको नहलाए विना केवल ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास अथवा जल, अग्नि या सूर्यकी उपासना आदि किसी भी साधनसे भगवत्तत्त्वकाज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता]

महाजनोंके चरणोंकी धूलिसे नहानेसे ही भक्ति प्राप्त होती है। श्रीप्रह्लादजी कह रहे हैं—

'नैषा मतिस्तावदुरुक्रमांघ्रिं,
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयशां पादरजोऽभिषेकं,
निष्किंचनानां न वृणीत यावत्॥'

(भा० ७।५।३२)

'निष्किञ्चन अर्थात्—जिनका विषयाभिमान दूर हो गया है—ऐसे परमहंस महावैष्णवोंके चरणोंकी धूलिसे जबतक ये इन्द्रिय-सुख-परायण देहारामी व्यक्तिसकल स्नान नहीं करते, तबतक इनकी मति भगवान् उरुक्रमके चरणकमलोंमें नहीं लगती है; अर्थात् जबतक वे सन्तोंकी चरणोंकी धूलिका आश्रय नहीं लेते तबतक भगवत्-चरणोंमें उनकी बुद्धि निविष्ट नहीं होती है।'

साधु-संगका माहात्म्य

सभी शास्त्र साधुसङ्गके माहात्म्यसूचक ऐसे वचनोंका पुनः पुनः गान करते हैं। साधुसङ्गका इतना माहात्म्य, इतनी शक्ति और इतना मूल्य क्यों है, कहा नहीं जा सकता। फिरभी इतना तो कहा ही जा सकता है कि साधुसङ्गके अभावमें किसी-किसी ने तो अनेक जन्मोंतक साधन करके भी कृष्णकी भक्ति नहीं पायी। किन्तु फिर उन्होंने ही साधुसङ्गके द्वारा अतिशीघ्र ही उसे पा लिया है। साधुसङ्गमें

कितनी माधुरी है, साधुसङ्गमें सन्तोंके मुँहसे प्रवाहित हरिकथा-रसमें कितनी आकर्षण-शक्ति है तथा सन्तों के चरित्रका कितना बड़ा बल है—इन्हें तो वही जानता है जिसने साधुसङ्ग किया है । साधुसङ्ग-विहीन तार्किकजन भी मुक्त-कंठसे साधुसङ्गकी महिमा घोषित करते हैं—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥
(भा० १।१८।१३)

[भगवद्भक्तके साथ निमेषकालमात्रके सङ्गसे जीवोंका जो असीम मङ्गल साधन होता है, उसके साथ जब स्वर्ग या मोक्षकी भी तुलनाकी सम्भावना नहीं की जा सकती, तो मरणशील मानवके तुच्छ राज्यादि सम्पदकी बात ही क्या कहूँ ।]

साधुका अन्तर-लक्षण

भगवान्‌की कृपा पानेके लिये साधुओंका सङ्ग करना कर्त्तव्य है और कर्त्तव्य है, इसमें तनिक भी सन्देहकी गुञ्जाइश नहीं है । किन्तु साधुसङ्ग करनेके पहले साधु कौन है—इसका विचार होना आवश्यक है । अगर ऐसा न किया गया तो साधुसङ्गके बदले असाधुसङ्ग हो जानेसे विशेष अमङ्गल होनेकी संभावना है । शास्त्रमें सन्तोंके लक्षण इस प्रकार कहे गये हैं—

निर्वैरः सदयः शांतो दंभाहंकार वर्ज्जितः ।
निरपेक्षो मुनिर्वीतरागः साधुरिहोच्यते ॥

[जो द्वेषशून्य, दयावान और शान्त हैं, जिनका दंभ और अहङ्कार दूर हो गया है, जो निरपेक्ष और विषयोंके प्रति रागशून्य हैं एवं जिनका मन भगवत्-चरणोंमें लगा हुआ है, उन्हें साधु कहते हैं ।]

पाठक ! साधु और वैष्णवोंमें भेद न समझेंगे । वैष्णवका लक्षण क्या है—इसके उत्तरमें श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभुने कहा है—

"—याँर मुखे एक कृष्णनाम ।
सेई त वैष्णव,करिह ताँहार सम्मान ॥
(चै० च० म० १५।१११)

कृष्णनाम निरंतर याँहार वदने ।
सेई वैष्णव-श्रेष्ठ भज ताँहार चरणे ॥

याँहार दर्शने मुखे आइसे कृष्णनाम ।
ताँहारे जानिह तुमि वैष्णव-प्रधान ॥"
(चै० च० म० १६।७२, ८)

'अर्थात्–जिनके मुखसे एक बार भी शुद्ध कृष्ण-नाम निकले वे वैष्णव हैं, उनका सम्मान करना चाहिये; जिनके मुखमें कृष्णनाम निरन्तर नृत्य करता है वे श्रेष्ठ वैष्णव हैं, उनके पादपद्मकी सेवा करनी चाहिये; एवं जिनके दर्शनमात्रसे ही कृष्णनाम जिह्वा पर नृत्य करने लगे उन्हें वैष्णवोंमें प्रधान समझो ।'

किन्तु ये सभी अन्तर्लक्षण हैं, इसलिये इनके द्वारा अचानक एक साधुको पहचानना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव होजाता है ।

साधुके बाहरी लक्षण

हम पहले ही कह आये हैं कि शुद्धहरिनामका ग्रहण—यह अन्तरकी क्रिया है । इसके अतिरिक्त साधुका बाहरी आचार कैसा होना चाहिये—इसके सम्बन्धमें श्रीचैतन्य देवने कहा है—

"असत संग त्याग,—एई वैष्णव आचार ।
स्त्री संगी—एक असाधु, 'कृष्णभक्त' आर ॥"
(चै० च० म० २२।८४)

असत्‌सङ्गका परित्याग करना चाहिये । साधारणतः असत्‌सङ्ग दो प्रकारका होता है—अवैध स्त्री-सङ्गी और कृष्ण-बहिर्मुख अभक्त । इनदोनों प्रकारके असाधु-सङ्गका परित्याग करना ही वैष्णवोंका बाह्य-आचार है । जिनका ऐसा आचरण देखा जाय, उन्हें वैष्णव समझना चाहिये और उनका सङ्ग करना चाहिये । ऐसे ही वैष्णवोंके सङ्गसे सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । दूसरे पक्षमें, जो लोग असत् सङ्ग त्याग करनेका कुछ भी प्रयत्न नहीं करते पर हरिनाम-ग्रहणादि, भक्ति-अङ्गोंका साधन करते हैं, वे शुद्धवैष्णव नहीं, वैष्णवप्राय, वैष्णवाभास हैं । ऐसे लोगोंके सङ्गसे साधुसङ्गका फल होना असम्भव है ।

साधुसङ्ग किसे कहते हैं ?

साधुसङ्ग क्या है ? साधुके साथ वार्त्तालाप करने-से ही साधुसङ्ग नहीं होता है । 'सङ्ग' शब्दका अर्थ प्रीति या आसक्ति से है । श्रीरूपगोस्वामीने प्रीतिका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति ।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीति लक्षणम् ॥
(उपदेशामृत-४)

कृष्ण-सेवाके उपयोगी कोई वस्तु साधुको देना, साधुसे वैसी कोई वस्तु ग्रहण करना, कोई गोपनीय बात साधुको कहना और उससे पूछना, हृष्टमनसे साधुके पास कृष्ण-प्रसाद भोजन करना और साधुको महाप्रसाद भोजन कराना ही साधुसंग करना है। असल बात तो यह है कि विषयी बन्धु-बांधवोंके प्रति भीतर ही भीतर आसक्तिका परित्याग कर साधुओंको अपना परम-बांधव जानकर उनके साथ कृष्ण-सम्बन्धी चर्चा करनेसे ही साधुसङ्ग होता है।

साधुके साथ विषयोंकी चर्चा करना साधु-सङ्ग नहीं

साधुओंके पास जाकर 'यह देश बहुत गरम है, उस देशमें तबीयत अच्छी रहती है, ये बड़े अच्छे लोग हैं, गेहूँ और चनेके भाव क्या होंगे,' इत्यादि विषयोंकी चर्चा करनेसे साधुसङ्ग नहीं होता है। साधु स्वानुभावानन्दमें निमग्न रह कर हो सकता है प्रश्नकर्त्ताके इन प्रलापोंका दो एक उत्तर दे भी दे किन्तु उससे क्या साधुसङ्ग होता है? अथवा कृष्णभक्ति प्राप्ति होती है? कदापि नहीं। साधुके पास जाकर उनके साथ प्रेमसे भगवत् कथाकी अलोचना करना ही साधुसङ्ग है। इसीसे भक्ति प्राप्त की जासकती है। श्रद्धालु साधकको विशेष सतर्क होकर भगवत्-कथा और विषय-कथाका पार्थक्य जानकर साधुसङ्ग-में कृष्णकथाकी चर्चा करनी चाहिये। दोनोंमें पार्थक्य यह है कि कृष्णकथा--विषयोंसे विमुख कराकर कृष्णके उन्मुख करती है और विषय-कथा—कृष्णसे विमुख कराकर विषय-विषमें डुबो देती है।

साधुसंगकी आवश्यकता

साधुसङ्गकी आवश्यकता बतलानेके लिये अधिक कुछ कहनेका प्रयोजन नहीं है। श्रद्धालु साधकमात्रको ही साधुसङ्ग के लिये यत्न करना चाहिये। श्रद्धाके रहते हुए भी जो भजनमें उन्नति नहीं कर रहे हैं, उन्हें साधुसङ्ग करना चाहिये। साधुसङ्गका अभाव ही उनकी उन्नतिके मार्गमें प्रतिबन्धक है। सभी साधकोंको श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके निम्नलिखित कतिपय वाक्योंको सर्वदा स्मरण रखना चाहिये--

'कौन भाग्ये कौन जीवेर 'श्रद्धा' यदि हय।
तबे सेई जीव 'साधु-संग' करय॥"
(चै०च०म०१३।६)

'किसी भाग्यसे (अज्ञात सुकृतिसे) यदि जीवमें श्रद्धाउत्पन्न होती है तभी वह साधुओंका सङ्ग करता है।'

मायामुग्ध जीवोंको लक्ष्य कर महाप्रभु कहते हैं—

'नित्य बद्ध' कृष्ण हैते नित्य बहिर्मुख।
नित्य संसार, भुञ्जे नरकादि दुःख॥
भ्रमिते भ्रमिते यदि साधुवैद्य पाय।
ताँर उपदेश मन्त्रे पिशाची पलाय॥
कृष्ण भक्ति पाय, तबे कृष्ण-निकट जाय॥
(चै० च० म० २२।१२,१४-१५)

"नित्यबद्ध जीव कृष्णसे नित्य बहिर्मुख रहकर संसारमें स्वर्ग-नरकादि सुख-दुःख भोग करते हैं, कृष्ण बहिर्मुखताके कारण मायापिशाची उन्हें स्थूल और लिङ्ग-आवरणमें बद्ध रखकर दण्ड प्रदान करती है अर्थात् आध्यात्मिकादि तापत्रय उन्हें बहुत ही जर्जरित करते हैं;संसारमें ऊपर-नीचे भटकते-भटकते यदि किसी समय साधुरूपी वैद्य मिल गया तो उसके उपदेशरूपी मन्त्रद्वारा माया पिशाची जीवको छोड़कर दूर भाग जाती है और जीव भी कृष्ण-भक्ति प्राप्तकर श्रीकृष्णके निकट गमन करता है।"

कर्मी, ज्ञानी आदिको लक्ष्य कर प्रभु कहते हैं—

"भ्रमिते भ्रमिते यदि साधु संग पाय।
सब त्यजि तबे तिहों कृष्णेरे भजय॥"
(चै० च० म० २४-३०५)

"संसारमें भटकते-भटकते यदि जीवको साधुसङ्ग मिल गया तो वह सबको (कर्मी, ज्ञानी, योगी आदि) छोड़कर कृष्णका भजन करता है।"

हरिनाम-परायण साधकोंको महाप्रभु कह रहे हैं—

"असाधु-संगे भाइ कृष्णनाम नाहि हय।
नामाक्षर बाहिराय बटे, तबु नाम कभु नय॥
कभु नामाभास हय, सदा नाम अपराध।
यदि करिबे कृष्ण नाम साधु संग कर।
साधु संगे कृष्णनाम एई मात्र चाइ।
संसार जिनिते आर कौन वस्तु नाइ॥
(प्रेम विवर्त)

"असाधु-सङ्गमें कृष्ण नाम कभी नहीं होता, नामाक्षर या शब्द-सामान्य होता है, उसे शुद्ध नाम नहीं कह सकते हैं। उनके मुखसे जो नामाक्षर निकलता है वह कभी-कभी नामाभास होता है नहीं तो सर्वदा ही नामापराध होता है। नामापराध और नामाभाससे शुद्धकृष्णनाम सर्वथा ही पृथक वस्तु है। यदि शुद्ध कृष्ण नाम करना चाहते हो तो साधुओंका सङ्ग करो। मुझे तो साधुसङ्ग में श्रीकृष्ण नाम करनेकी एकमात्र आकांक्षा है, क्योंकि संसारको पार करनेके लिये अन्य कोई उपाय नहीं।"

इस प्रकार भिन्न-भिन्न अधिकारमें स्थित साधकों के लिये महाप्रभुने एकमात्र साधुसङ्ग करनेका उपदेश दिया है। पाठकवर्ग इससे अनुमान कर सकते हैं कि साधुसङ्गकी कितनी महिमा है। इस संसार क्षेत्रमें साधुसङ्ग कल्प-तरुके सदृश है!!

साधुसङ्गका प्रभाव

साधुसङ्गकी अपार महिमापर कौन अविश्वास कर सकता है? कौन नहीं जानता, श्रीहरिदास ठाकुरके सङ्ग-प्रभावसे पापी वेश्या भी कृष्णभक्ति प्राप्त करनेके उपयुक्ता हो गयी थी? किसने नहीं सुना है कि देवर्षि नारदके सङ्ग-प्रभावसे अति निष्ठुर हृदयवाला व्याध भी हरिभक्ति लाभकर छोटी-छोटी चींटियोंके प्राणनाशके विषयमें भी कितना सतर्क होगया था। अति पाषण्डी जगाई पहिले नित्यानन्द प्रभुका सङ्ग लाभ करके ही तो अपने कोमल हृदयका परिचय दिया और श्रीगौरचन्द्रका कृपापात्र बना। पतित-पावन नित्यानन्दके सङ्ग और कृपाके बिना जगाई मधाईका उद्धार कैसे हो सकता था? इसीलिये साधुओंके प्रति अतिशय श्रद्धालु होकर साधुसङ्गमें प्राण और मनको न्योछावर कर, सभी "जयराधे-श्याम" कहकर जीवन-मनको कृतार्थ करें।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

मायावादकी जीवनी

[पूर्व प्रकाशित वर्ष १, संख्या २, ३७ पृष्ठ के आगे]

अन्य बौद्ध-ग्रन्थोक्त दो बुद्ध

आचार्य शंकरद्वारा आदृत अमर कोषके अतिरिक्त बौद्धशास्त्रके अन्य ग्रन्थ जैसे 'प्रज्ञा-पारमिता सूत्र', 'अष्टसाहस्रिक प्रज्ञा-पारमिता सूत्र', शत-साहस्रिक प्रज्ञा-पारमिता सूत्र', 'ललित विस्तार' आदि ग्रन्थोंकी आलोचना करनेसे भी मनुष्य-बुद्ध, बोधिसत्त्व बुद्ध और आदिबुद्ध—इन तीनों श्रेणियोंके बुद्धके विषयमें अवगत होते हैं। मनुष्य-बुद्धमें गौतम बुद्ध एक हैं। ज्ञान लाभ करनेके बाद ये 'बुद्ध' नामसे प्रसिद्ध हुए। बोधि सत्त्व-बुद्धमें 'समन्त-भद्रकका' उल्लेख किया गया है। अमरकोषोक्त भगवान् बुद्धका अपर नाम 'समन्त भद्र' है, एवं 'गौतम' मनुष्य बुद्ध हैं। अमर कोषमें लिखे गये अवतार बुद्धके अठारह नामोंके अतिरिक्त उल्लिखित ग्रन्थोंमें और भी अनेक बुद्धोंका उल्लेख पाया जाता है। 'ललित-विस्तार' ग्रन्थके २१ वें अध्यायके १७८ पृष्ठमें लिखा गया है कि 'पूर्व बुद्धके' स्थानपर गौतम-बुद्धने तपस्या की थी—

"एष धरणीमण्डे पूर्व्वं बुद्धासनस्थः"

समर्थं धनुर्गृहीत्वा शून्य-नैरात्मबाणैः।
क्लेशरिपुं निहत्वा दृष्टिजालञ्चभित्वा-
शिव विरजमशोकां प्राप्स्यते बोधिमग्र्यां॥

उक्त श्लोकसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि शाक्यबुद्धने पूर्व बुद्धके आविर्भाव-क्षेत्रको अपने सिद्धिके अनुकूल समझ कर वहीं एक पीपल-वृक्षके नीचे तपस्या की थी। इस स्थानका प्राचीन नाम कीकट था, पर गौतम बुद्धके वहाँ सिद्धि प्राप्त करनेके बादसे उस स्थान का नाम 'बुद्ध गया' (बोध गया) हो गया है। यहाँ आज भी बुद्ध देवकी प्रतिमूर्त्ति शंकर-सम्प्रदाय के गिरि संन्यासियोंके अधिनायकत्वमें परिसेवित हो

रही है। वे स्वीकार करते हैं कि बुद्ध गया ही, "पूर्व बुद्ध," आदि बुद्ध या विष्णु-बुद्धका आविर्भाव स्थान है। यह स्थान शाक्यसिंह बुद्धके मुक्ति लाभ करने का उपासना क्षेत्र मात्र है। प्राचीन 'अवतार बुद्ध' और वर्त्तमान 'गौतम बुद्ध' एक नहीं हैं।

'लंकावतार सूत्र' एक प्रसिद्ध प्रामाणिक बौद्ध ग्रन्थ है। इसमें भी जिस बुद्धका उल्लेख मिलता है, उससे पता चलता है कि उल्लिखित बुद्ध आधुनिक शाक्यसिंह बुद्धसे पृथक हैं। इस ग्रन्थके प्रथम भाग-में ही लंकाधिपति रावणने जिन-पुत्र भगवान् पूर्व-बुद्ध तथा भविष्य कालमें आविर्भूत होने वाले बुद्ध या बुद्धसुत—सभीका स्तव किया था। पाठकवर्गकी जानकारीके लिये उसका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जारहा है—

अथ रावणो लङ्काधिपतिः तोटक वृत्तेनानुगाय्य पुनरपि गाथागीतेन अनुगायन्ति स्म। * * *

लंकावतार सूत्रं वै पूर्व्वबुद्धानुवर्णितं।
स्मरामि पूर्वकैः बुद्धैर्जिनपुत्रपुरस्कृतैः ॥९॥
सूत्रमेतन्निगद्यन्ते *भगवानपि भाषतां।
भविष्यन्त्यनागते काले बुद्धा बुद्धसुताश्च ये ॥१०॥

—[लङ्कावतारसूत्रं—1st Eddn. Fasc 1—by S. C. Das, C. I. E & S. C. Acharya Vidyabhusan M.A.,M.R.A.S.; Published by the Buddhist Text Society of India under the patronage of Government of Bengal. Printed at the Government Press, in January, 1900.]

अंजनसुत बुद्ध और शुद्धोदन बुद्ध पृथक हैं

कुछ लोग कह सकते हैं—आचार्य शङ्करकी अपेक्षा वैष्णवोंने ही बुद्धके प्रति अधिक सम्मान और आन्तरिक श्रद्धा प्रदर्शित की है। अतः वैष्णवोंको भी बौद्ध कहा जाय। यहाँ मेरा मत यह है कि लिङ्ग-पुराण, भविष्यपुराण तथा वराह पुराणोक्त दशावतार-के वर्णन प्रसंगमें नवम् अवतार-स्वरूप जिस बुद्धका उल्लेख आया है, वे बुद्ध शुद्धोदनके पुत्र गौतम बुद्ध नहीं हैं। वैष्णव शून्यवादी बुद्धकी पूजा नहीं करते। वे "नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानव-मोहिने" (भा० १०।४०।२२)—मन्त्र उच्चारण करते हुए श्रीश्रीबुद्धदेव को अर्थात् विष्णुके नवम् अवतार बुद्धको नमस्कार करते हैं।

श्रीमद्भागवत्में अन्यत्र श्रीबुद्धदेवके आविर्भाव सम्बन्धमें जो वर्णन आया है उसे नीचे उद्धृत किया जाता है।

"ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धो नाम्नाञ्जनसुतः 'कीकटेषु' भविष्यति ॥"
(भा० १।३।२४)

इस श्लोकमें जिस बुद्धका उल्लेख कियागया है, वे अञ्जनके पुत्र हैं जिन्हें कुछलोग अजीनके पुत्र भी कहते हैं। तथा इनका अविर्भाव कीकट नामक स्थान अर्थात् गयामें हुआ था। पूज्यपाद श्रीधरस्वामीने उपर्युक्त श्लोककी टीका इस प्रकार की है—

"बुद्धावतारमाह तत इति। अञ्जनस्य सुतः। अजिन सुत इति पाठे अजिनोऽपि स एव। 'कीकटेषु' मध्ये गया-प्रदेशे।"

अद्वैतवादी भूलवशतः हो अथवा किसी दूसरे कारणसे ही हो श्रीधरस्वामीपादको अपने संम्प्रदायके अन्तर्भुक्त मानते हैं। कुछ भी हो इस सम्बन्धमें उनकी उक्तिको मायावादियोंके लिये सत्य समझकर ग्रहण करनेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। वे कहते हैं कि 'अञ्जनसुत-बुद्ध भागवत सम्प्रदायके पूज्य हैं एवं उनका जन्मस्थान गया प्रदेशमें है। कलिके सम्यक आगमनमें अर्थात् प्रारम्भमें उनका आविर्भाव होता है। नृसिंह पुराणमें (३६।२६) इसी प्रकार लिखा है—

"कलौ प्राप्ते यथा बुद्धो भवन्नारायण-प्रभुः।"

इससे विदित होता है कि भगवान् बुद्धका आवि-र्भाव कम-से-कम आजसे ३५०० वर्ष पूर्व तथा ज्योतिषके मतानुसार ५००० वर्ष पूर्व है। उनकी जन्म-तिथिके सम्बन्धमें निर्णयसिन्धुके द्वितीय परिच्छेदमें लिखा है—

"ज्यैष्ठ शुक्ल द्वितीयायां बुद्धजन्म भाविष्यति।"

अर्थात् ज्येष्ठमासके शुक्ल-पक्षकी द्वितीया-तिथिमें बुद्धदेवका जन्म होगा। उक्त ग्रन्थमें अन्यत्र बुद्धदेव की पूजाके सम्बन्धमें लिखा है—

* "निगद्यते is correct"

"पौष शुक्लस्य सप्तम्यां कुर्यात् बुद्धस्यपूजनम्" ।

अर्थात् पौष मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें बुद्धदेवकी पूजा करनी चाहिए। बुद्धदेवके सम्बंध में उक्त प्रकारकी पूजा, नमस्कार और अर्चन-विधि जो दृष्ट होती है वह विष्णुके नवम अवतार बुद्धको लक्ष्य करती है। विष्णुपुराण, अग्निपुराण,वायुपुराण और स्कन्दपुराण आदि ग्रन्थोंमें अनेकस्थानोंमें उनके संबंधमें उल्लेख है। देवी भागवत नामक एक आधुनिक ग्रन्थमें तथा शक्ति-प्रमोद नामक दूसरे ग्रन्थमें भी जनैक बुद्धका प्रसंग उल्लिखित हुआ है, वे शाक्यसिंह बुद्ध हैं-विष्णु बुद्ध नहीं। देव-देवियोंके सेवक अथवा पञ्चोपासक शून्यवादी शाक्यसिंह बुद्ध की यदि किसी तरह पूजा अथवा सम्मानादि करें, तो उसमें उससे सनातन धर्म्मावलम्बी भागवतोंका कुछ भी बिगड़ता नहीं। मैक्समूलरके (maxmullar) विचारसे शाक्यसिंह बुद्धका जन्म ईसासे ४७७ वर्ष पूर्व (?) कपिल वस्तु नगरके लूम्बिनी वनमें हुआ था। प्राचीन कपिल वस्तु नगर नैपालकी तराईमें एक प्रसिद्ध जनपद है। गौतमके पिताका नाम शुद्धोदन और माताका नाम मायादेवी था। यह ऐतिहासिक प्रसिद्ध सत्य है। अञ्जन-पुत्र एवं शुद्धोदन-पुत्र-उभय पुत्रोंके नाम एक होनेपर भी व्यक्ति एक नहीं हैं। एकका आविर्भाव स्थान 'कीकट' अर्थात् 'गया है-- जो बोध गयाके नामसे आजकल प्रसिद्ध है और दूसरेका जन्म स्थान कपिलवस्तु नगर है। सुतरां विष्णु-बुद्धके आविर्भाव-स्थान तथा माता-पिता प्रभृति सभी गौतम बुद्धके जन्म-स्थान और माता-पिता आदिसे सम्पूर्ण पृथक हैं।

अब देखा जाता है कि साधारणतः लोग जिन्हें 'बुद्ध' कहते या समझते हैं, असलमें वे विष्णुके नवम अवतार बुद्ध नहीं हैं। आचार्य शंकरका इस सम्बन्धमें जो विचार है, हम उसके साथ एकमत नहीं हो पाते। अवश्य, ऐतिह्यमूलक विचारोंमें इसी प्रकार मतभेद प्रायः दृष्टिगोचर होता है,तथापि किसी गुरुत्वपूर्ण विषयका निरपेक्ष भावसे आलोचना होने की नितांत आवश्यकता है। बुद्धका ऐश्वर्य देखकर उनके प्रति श्रद्धा ज्ञापन करना एक बात है और उनके सिद्धान्त तथा विचारोंसे आकृष्ट होकर उनकी पूजा और सम्मान करना कुछ और बात है। जैसा भी हो मेरा विश्वास है—पाठकवर्ग स्पष्ट ही समझ गये होंगे कि बुद्ध केवल एक नहीं हैं शाक्यसिंह बुद्ध और अवतार बुद्ध सम्पूर्ण पृथक हैं। हो सकता है दोनोंके बीच किसी-किसी अंशोंमें साम्य भी हो तथापि दोनों को कभी भी एक स्वीकार नहीं किया जा सकता।

आचार्य शंकरका बौद्धत्व

बौद्धमतानुसार शंकर बौद्ध हैं।

बौद्ध मतावलम्बी किशोरी मोहन चट्टोपाध्यायने अपने प्रकाशित "प्रज्ञा-पारमिता सूत्र"-१७७ पृष्ठमें लिखा है-'बौद्धोंका शून्यवाद' और हिन्दुओंका (शंकराचार्यका) 'ब्रह्मवाद' एकार्थ बोधक विभिन्न शब्द मात्र हैं।"किशोरी मोहन एक प्रधान बौद्ध-धर्मावलम्बी थे। इसमें कोई मतभेद नहीं है। आचार्य शंकर-और बुद्धदेवका एक ही मत था-इसे उन्होंने उक्त ग्रन्थमें प्रमाणित किया है। विज्ञान भिक्षु प्रमुख सांख्यके दार्शनिक पण्डितगण, पातञ्जल दार्शनिक योगीगण, वेदान्त दार्शनिक श्रीरामानुज, श्रीमध्व श्रीजीव गोस्वामी, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रीबलदेव प्रभृति आचार्योंने, यहाँतक कि बौद्ध पण्डितोंने भी शङ्करको बुद्ध विचार-धाराके परिपोषकरूपसे ग्रहण किया है। शङ्करने स्वयं ही—हमारी पूर्वप्रदर्शित युक्तियों के अनुसार बुद्धके प्रति यथेष्ट श्रद्धा और सम्मानका प्रदर्शन किया है। विविध पुराणोंमें शङ्करवादका प्रच्छन्न बौद्धवादके नामसे निर्देश किया गया है। पुराणोंकी उन उक्तियों को अकाट्य समझकर शङ्करवादी अनेक व्यक्ति उन श्लोकोंको प्रक्षिप्त कहकर कपट युक्ति पेश करना चाहते हैं। असलमें उन श्लोकोंको प्रक्षिप्त कहनेका कोईभी यथार्थ कारण नहीं।

बौद्ध और शांकर सिद्धान्तोंका ऐक्य

ऐतिह्यके आधारपर अनेकों प्रकारसे हमने शङ्कर-मत और बौद्धमतमें परस्पर सौसादृश्य लक्ष्य किया है। केवल ऐतिह्यके बलपर आचार्य शङ्करको प्रच्छन्न बौद्ध कहनेसे, होसकता है—मायावादियोंको कुछ आपत्ति हो। उनकी इस आपत्तिको दूर करनेके लिये तथा उनके सन्तोषविधानके लिए शङ्कर तथा बुद्ध दोनोंके

सिद्धान्तोंको संग्रहकर उनका ऐक्य प्रदर्शन कर रहा हूँ। मायावादका जीवन किस श्रेणीकी विचार-धारामें किस तरह पुष्ट होकर क्रमशः वृद्धिप्राप्त हुआ है यही यहाँ पर पाठकोंके सामने निवेदन करनेका विषय है। प्रकृति ही माया है अथवा मायाका अङ्ग है। अतः बुद्धके प्रकृतिवादको मायावाद कहनेसे कोई विशेष पार्थक्य नहीं होता। 'बुध' धातुके कर्तृवाच्यमें 'क्त' होने पर 'बुद्ध' शब्द निष्पन्न होता है। बुधधातुसे बोध या ज्ञानका लक्ष्य होता है। 'मायाके' गर्भमें जिस बुद्धका अर्थात् ज्ञानका आविर्भाव होता है उसे माया-वाद कहते हैं। वास्तवमें गौतमके आविर्भावके बादसे ही मायावाद एक विशिष्ट रूप धारणकर जगत्-में प्रकाशित और प्रचारित हुआ है। बौद्ध-युगके पूर्वका अद्वैतवाद आधुनिक बुद्ध और शङ्करके अद्वैत वाद या मायावादसे सम्पूर्ण पृथक था। जैसा भी हो, यहाँ शङ्कर और बौद्ध-मतका ऐक्य प्रदर्शन ही हमारा कर्त्तव्य है। सुतरां 'जगत्', 'ब्रह्म', 'शून्य', 'मोक्षका उपाय' और ब्रह्म तथा शून्यका एकत्त्व आदि विषयोंके सम्बन्धमें बौद्ध और शङ्कर मतमें मूलतः कोई पार्थक्य नहीं—नीचे यही प्रदर्शित किया जारहा है।

बौद्धमतमें जगत् मिथ्या है

बौद्ध-मतमें जगत् एक शून्यतत्त्व है। जगतका आदि असत् अर्थात् शून्य है तथा अन्तभी असत्-स्वरूप शून्य है। जिसका आदि और अन्त असत् या शून्य है उसका मध्य भी असत् या शून्य ही होगा। उनके मतमें काल किसी भी रूपमें स्वीकृत नहीं। शून्य ही आदि और शून्य ही अन्त माना जाता है। 'अतीत' शून्य है, 'भविष्य' भी शून्य है तथा दोनोंका मध्यवर्ती 'वर्त्तमान' भी शून्य है। वे कहते हैं—'वर्त्तमान नामक कोई भी काल नहीं—वह अतीत एवं भविष्यका ही नामान्तर है। कोई भी वाक्य बोलनेसे पूर्वतक भविष्य है तथा बोलनेके साथ-ही-साथ अतीत हो जाता है। अतः 'वर्तमान' नामक किसी भी कालका अस्तित्व ढूढ़नेपर भी नहीं पाया जाता।' इस युक्तिका अवलम्बन कर बौद्धवादी प्रमाणित करना चाहते हैं कि वर्त्तमान प्रत्यक्ष जगत्का भी अस्तित्व नहीं है। हमारा कहना है—'राम जीवित है'—कहनेसे क्या रामका अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता? राम नामका कोई भी व्यक्ति नहीं है—क्या यही कहना होगा? ऐसा होनेसे 'वर्त्तमान' कालको अस्वीकार करनेकी युक्ति देनेवाला वर्त्तमान रहकर जो युक्ति प्रदर्शित करता है उस युक्ति और उस व्यक्ति—दोनोंको भी अस्वीकार करना होगा। वस्तुतः वर्तमान काल है, इसीलिये भूत और भविष्य कालकी सत्ता उपलब्धि होती है। जैसा भी हो बौद्धमतमें जगत्का त्रिकाल मिथ्यात्व ही प्रतिपन्न होता है, आचार्य शङ्करने भी यहीमत ग्रहण किया है—यह पीछे दिखलाया जायगा।

(क्रमशः)

श्रीचैतन्यदेवकी अनुपम वाणी

वर्त्तमान सभ्यताका अनुशीलन करनेसे विदित होता है कि समस्त प्राणी एक ही पथपर आरूढ़ हो रहे हैं। वह पथ क्या है? सांसारिक कार्यकलाप—अपनी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति। इनमें सर्वप्रथम धन की आवश्यकता है। आजका संसार रुपयेको "खुदाका बड़ा भाई, मानता है। परन्तु रुपये देनेवालेको तनिक भी याद नहीं करता। सूरदासका यह पद कितना मर्म स्पर्शी है—

"जिन तन दियो ताहि बिसरायो,
ऐसो नमक हरामी"

तुलसीदासजीने दुर्लभ मानव जीवन पर मानसमें लिखा है—

'बड़े भाग मानुस तन पावा।
सुर दुर्लभ सदग्रन्थन गावा॥

परन्तु—

"जीवन हइल शेष,
ना भजिले हृषिकेश"

जीवन व्यर्थ ही चला गया। वस्तुतः इसके अधः पतनका मूल कारण क्या हो सकता है? संक्षेपमें यह है कि मनमाने धर्म अपनाये जा रहे है। प्रश्न उठता

है कि धर्म क्या है ? क्या धर्मसे मानवधर्म, मनोधर्म, आत्मधर्म का अर्थ है या अन्य कोई अर्थ ।

श्रीचैतन्यदेवने, जो कलियुगपावनावतारी भगवान् हैं, जगतवासियोंके कल्याणके लिये बतलाया कि 'धर्म' शब्द एकाङ्गी नहीं, व्यापक है । उसका अर्थ है-- "स्वभाव" जिसे आँग्ल भाषामें 'Nature' कहते हैं। वे कहते हैं—

"जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास"

—[जीवका स्वरूप कृष्णका नित्य दास है]

दृष्टान्त स्वरूप जलको लीजिये । जलका स्वभाव तरलता है । तारल्य जलका नित्य धर्म है । यदि कारणवश वह जल जमकर हिम हो जाय तो हिमरूप काठिन्य जलका नित्यधर्म न होकर नैमित्तिकधर्म होगा। क्योंकि वही हिमखण्ड गर्मी पा जानेपर कठिनता परित्याग कर अपना पूर्व धर्म तरलता प्राप्त कर लेता है ।

उपर्युक्त कथन ठीक जीवोंपर घटता है । जीव स्वरूपतः भगवान्का नित्य दास है । अतः भगवत्सेवा ही उसका नित्यधर्म है । जीवका भगवान् या ब्रह्म होना तो दूर रहा वह कभी भी उसके समान या उससे अधिक नहीं हो सकता । उपनिषदोंका कहना है "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" (श्वेताश्वतर उ०) जीव भगवान्का विभिन्नांश है । (ममैवांशोजीवलोके जीवभूतः सनातनः) अंश कभी भी पूर्णके बराबर नहीं हो सकता । अतः जीवका अपनेको ब्रह्म समझना अपराध है । जब जीव अपनेको ब्रह्म समझता है तब इसे अपराधरूप ठण्डके कारण चेतन-शून्य अथवा सूवा-विहीनरूप हिमखण्ड हो जाता है । फिर कभी भाग्यवश साधुसङ्गरूप गरमीके स्पर्शसे क्रमशः अपराध क्षय होने पर पुनः भगवान्की नित्य-सेवा रूप तरलताधर्म अर्थात् अपनी स्वाभाविक स्थिति प्राप्त कर लेता है ।

आत्माका सम्बन्ध परमात्मासे है । परमात्मासे जीवको अलग नहीं किया जासकता । निम्न उदाहरण भी सुसङ्गत होगा । जैसे सूर्य्यकी किरणोंका सम्बन्ध सूर्य्यसे है । सूर्य्यकी किरणोंकी सत्ता सूर्य्यसे अलग नहीं । हम एकको दूसरेसे पृथक नहीं कर सकते । इसी तरह जीवात्माका सम्बन्ध भी परमात्मासे है । गुणगत दोनोंका साम्य है; किन्तु परिमाण विचारसे जीवअणु और क्षुद्र है तथा भगवान् विभु और विराट है । अतः दोनोंमें भेद हैं । किन्तु इस भेदके रहते हुए भी जीव शक्ति है, भगवान् शक्तिमान हैं । "शक्तिशक्तिमतोरभेदः* शास्त्र-वचनके अनुसार जीव की सत्ता भगवान्से पृथक नहीं । किरणें कभी भी सूर्य नहीं हो सकती; साथ-ही साथ किरणोंका सूर्य्यसे पृथक अस्तित्व भी नहीं रह सकता । इसी तरह जीवात्मा और परमात्माका भेद और अभेद साथ-साथ ही चलता है । किन्तु यह भेद और अभेद मानव-कल्पनासे परे है, इसलिये दार्शनिक विचारमें इसे अचिन्त्य भेदाभेद कहा गया है । यही सर्व-शास्त्र-सम्मत विशुद्ध विचार है ।

कतिपय विद्वानोंका विचार है कि जीव ही ब्रह्म है । अतः वह भी पूर्ण है । प्रमाण-स्वरूप वे इस निम्न-लिखित मन्त्रकी अवतारणा करते हैं ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ पूर्ण है वह, पूर्ण है यह,
पूर्णसे निष्पन्न होता पूर्ण है ।
पूर्णमें से पूर्णको यदि ले निकाल,
शेष तब भी पूर्ण ही रहता सदा ॥

किन्तु उक्त मन्त्र भगवान् (अवातारी) और उनके अतवार-समूह को लक्ष्य करता है । अवतारी पूर्ण है और उनसे निकले अवतार-समूहभी पूर्ण हैं । उच्च गणित जानने वाले विद्यार्थी जानते हैं कि—

अनन्त + अनन्त = अनन्त
अनन्त — अनन्त = अनन्त
अनन्त — ० = अनन्त

इसी तरहका सम्बन्ध भगवान् और भगवदवतारों में है न कि भगवान् और जीवमें ।

यह सब ज्ञान परमेश्वरके कृपापात्रोंसे मिलता है । भगवान्की कृपा इन्हीं सन्तोंके द्वारा जगत्में अवतरण

*शक्ति और शक्तिमान अभेद है ।

करती है। ये जीवको भगवत सेवाकी शिक्षा देते हैं। जैसे एक सती स्त्री अपनी सेवासे पतिको अपने वशीभूत कर लेती है तथा पति भी अपनेको उसपर न्योछावर करनेके हेतु तत्पर रहता है। इसका मूल कारण है सेवा। सेवाद्वारा ही सेव्यकी प्राप्ति हो सकती है। सेव्य वस्तुकी उपलब्धि करनेके लिये उसके (सेव्यके) ही विधि विधानको अपनाना पड़ेगा। अपनी दैनिक चर्य्यापर दृष्टि डालिये। यदि आप कार्य्यालयमें नौकर हैं तो आप वहाँके नियमों व कानूनोंको पूर्ण-रूपसे पालन करते हैं। आपको समयपर पहुँचना तथा लौटना पड़ता है। ऐसा करनेसे आप अपने आफिसर को प्रसन्न रख सकते हैं यदि आप प्रतिकूल चलते हैं—स्वयं ही मालिक बनजाना चाहते हैं तो आप नौकरीमें उन्नति नहीं कर सकते। आपको ताड़ना भी दी जाती है और एकदिन नौकरीसे हाथ भी धोना पड़ता है।

वास्तवमें यही पद्धति चिद्राज्यमें पहुँचनेके लिये आवश्यक है। हमारे लिये नितान्त आवश्यक है कि हम "महाजनो येन गतः स पन्थाः" का अनुसरण करें। वह पथ हमारे धर्मशास्त्र और प्राचीन ग्रन्थ प्रदर्शित करते हैं। इसके लिये केवल स्वयं चेष्टासे कार्य नहीं चलता। पथ प्रदर्शककी आवश्यकता है। वह कौन हो सकता है? वह है गुरु। केवल लाल कपड़े धारण करनेवाले, साधु और सफेद कपड़े धारण करनेवाले, बाबाजी नहीं। वरन् वे जिन्होंने अपना जीवन भगवद् सेवामें लगादिया है। जगत्गुरु कृष्णदास कविराजने श्रीचैतन्य चरितामृतमें लिखा है—

किवा विप्र, किवा-न्यासी, शूद्र केने नय।
जेई कृष्ण तत्त्ववेत्ता सेई गुरु हय॥

तत्त्वविद् व्यक्ति किसीभी कुल, वर्ण या आश्रम का क्यों न हो वही सद्गुरु है। अतः ऐसे महापुरुषों की सेवा ही भक्ति है किन्तु अतत्त्वविद् व्यक्तियोंकी सेवा कर्म है।

पाठकगण! गुरुकी महिमा अपरम्पार है। गुरु वही है जो श्रोत्रियम् एवं ब्रह्मनिष्ठ हो—भगवान्के नाम, रूप, गुण और लीलाका कीर्त्तन, स्मरण, चिन्तन और मनन जिसके जीवनका अङ्ग हो। मुण्ड-कोपनिषद्में लिखा है—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्म निष्ठम्॥

शास्त्रमें गुरुकी महिमाके प्रति लिखा है—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

सद्गुरुका आश्रय करनेसे अवश्य कृष्ण प्रेमकी प्राप्ति होती है। ठाकुर भक्तिविनोदने लिखा है—

"शुद्ध भकत- चरण-रेणु,
भजन- अनुकूल।
भकत- सेवा परम सिद्धि,
प्रेम लतिकार मूल॥

* * *

भकति विनोद, कृष्ण भजने,
अनुकूल पाय जाहाँ।
प्रति दिवसे परम सुखे,
स्वीकार करये ताहाँ॥"

यदि सच्चे गुरु व भक्तका संग मिल गया तो जीवन सार्थक होगया अन्यथा परिणाम उल्टा होगा। दूधका सेवन सभी करते हैं। गायके बछड़ेका भी जूठा दूध पीते हैं, क्योंकि वह बल वर्द्धक व पुष्टि-कारक होता है। यदि वही पय सर्प पान कर ले तो उसको कोई नही पीता। कारण विषाक्त होना। ठीक ऐसे ही असाधुके मुखसे निकली हुई कथा भी होती है। वह उस धानके समान है जो देखनेमें सुन्दर परंतु अन्दर से निर्बीज हैं। उसके बोने से अन्य धानके पौधे कदापि नहीं उगेंगे।

"छाड़ि मन हरि विमुखन को संग।
जाके संग कुबुधि उपजत है परत भजन में भंग॥"

साधुओंका चरित्र पावन होता है। उनके निवास स्थान तीर्थ स्थानोंसे भी श्रेष्ठ हैं। उनका चरित्र तो चन्दन के समान है जो घिसे जानेपर भी सुगन्ध देता है। वह स्वर्ण है, जो कितना ही दग्ध किया जाय पर कान्ति उदीप्त होती जाती है। उस ईख की तरह है जो टुकड़े-टुकड़े हो जानेपर भी मिठास नहीं छोड़ती।

भगवद् प्राप्तिका एकमात्र उपाय भक्ति-निष्ठा का होना है। उनके लिए सती स्त्री जैसी निस्वार्थ

चेष्टा व सेवाकी लगन होनी चाहिए, एक कुलटा की नहीं जो अनेकों पर पुरुषोंको प्रेमका झूठा दावा दिखाकर बहकाती है जो मनसे किसी एककी भी नहीं। साधकको ऐसा न होकर एकनिष्ठा व विश्वाससे कार्य करना चाहिए। तभी ऐकान्तिक भक्ति व प्रेमके बीजारोपण हो सकेगें अन्यथा नहीं। संसारका प्रेम-प्रेम नहीं, वह काम है। आज-कल प्रेम शब्दका दुरुपयोग किया जाता है। स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्र, भाई-भाई मालिक-चाकर आदिके परस्परका व्यवहार तथा देश-प्रेम और विश्वप्रेम आदि शास्त्रीय-प्रेम-शब्द वाच्य नहीं, वे तो छाया-प्रेम या काम हैं। श्री चैतन्य देवने कहा है—

आत्मेन्द्रिय प्रीतिवांछा,तारे बोलि काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे प्रेमनाम॥"

जो कार्य्य अपने इन्द्रियोंके पोषण हेतु किया जाता है वह काम है, उसके द्वारा आत्मधर्ममें प्रवेश करना दुष्कर है, पर जो कार्य्य भगवद् प्रीति उपार्जन हेतु किया जाता है वही नित्य-प्रेम अमर है। भक्तका उठना, बैठना, चलना, फिरना, बात करना इत्यादि शुद्ध-प्रेम है। वही सहयोगी है अन्य नहीं।

भक्तकी एक निष्ठाका दर्शन कीजिए—सभी उपास्य विष्णु-तत्व अभेद हैं। फिर भी उपासकोंके तारतम्य भेदसे उपास्य तत्त्वका भेद दिखलायी पड़ता है और उपासकको अपने ही उपास्यतत्त्वमें विशेष निष्ठा होती है फिर भी वह दूसरे उपास्य तत्त्वोंकी अवज्ञा नहीं वरन् सम्मानही करता है। एक निष्ठ भक्त श्री हनुमानजीकी निष्ठा आदर्श है। वे कहते हैं—

श्रीनाथे जानकी नाथे अभेद परमात्मनि।
तथापि मम सर्वस्वःरामःकमल लोचनः॥

(अर्थात्—लक्ष्मीपति श्रीनारायण और जानकी पति श्रीराम परमात्म तत्त्वकी दृष्टिसे दोनों अभेद अर्थात् एक ही हैं तथापि कमललोचन श्रीरामचन्द्र ही मेरे हृदय सर्वस्व है।)

भगवान्‌ने भी कहा है—

"नाहं तिष्ठामि बैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद॥"

श्री चैतन्यदेवने श्री मुखसे श्रीशिक्षाष्टकमें कहा है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः

अर्थात्—तृणकी अपेक्षाभी अतिश्य नम्र होकर वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु होकर स्वयं अमानी होते हुए दूसरेको मान प्रदान करके निरन्तर श्रीहरिसंकीर्त्तन करना चाहिए।

आज-कलके कृत्रिम साधुओंकी भाँति नहीं जो मौनी बने हुए हैं अथवा प्रवीण वक्ता है। कहना जानते हैं पर आचरण रत्तीभर नहीं। ये कौन हैं? अमुक मौनी बाबा। बोलते नहीं। पर क्षुधानिवृत्तिके लिए लिखेगें। सम्भवतया भय है कि बात करनेसे कलई खुल जायगी और प्रतिष्ठालोप हो जायेगी। हरिनाम नहीं कहेंगे।

श्रीमन्महाप्रभुने कहा है कि हरिनाम या हरिकीर्त्तन जोर-जोरसे करो, जिसकी मंगलध्वनि से वातावरण शुद्ध और हृदय-आकाशके श्यामल बादल सदैवके लिए विदीर्ण हो जाते हैं। इसीलिए—

भजो रे मन श्रीनन्दन,
अभय चरणारविन्द रे।
दुर्लभ मानव जनम सत्संगे।
तरहु यह भव सिंधु रे॥ १॥
शीत आतप बात बरिषन,
यह दिन यामिनी जाग रे।
विफल सेविनु कृपण दुर्जन,
चपल सुख लव लाग रे॥ २॥
यह धन यौवन, पुत्र परिजन;
इनसे कैसे प्रीति रे।
कमल दलजल जीवन टलमल,
भजो हरिपद नित्य रे॥ ३॥
*श्रवण,कीर्त्तन, स्मरण, वन्दन,
पाद सेवन दास्य रे।
पूजन, सखीजन, आत्म निवेदन,
गोविंददास अभिलाष रे॥ ४॥

(क्रमशः)

सुशीलचन्द त्रिपाठी, एम० ए०।

---

*उक्त-अंतिम पद नवधाभक्ति पर प्रकाश डाला गया है।

शरणागति

श्रीकृष्णचैतन्य-तत्त्व

[ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर]

दुर्मतिने ऐसा घेरा, संसार-बीच हूँ पड़ा हुआ ।
पर हे प्रभो ! आपका मुझपर अहो अनुग्रह बड़ा हुआ ॥
किसी महाजन अपने जनको तुमने भेज दिया स्वामी !
उसे दया आई लख मुझको महापतित, कुत्सित, कामी ॥
उसने कहा—"पास आ मेरे अरे दीन, सुन बात भली ।
तेरा हृदय उल्लसित होगा, विकसित होगी हृदय-कली ॥
नवद्वीपमें प्रकट हुए हैं श्रीश्रीकृष्ण देव चैतन्य ।
तुम सम दीन तारते हैं वह, लोग देखकर होते धन्य ॥
दीन हीन जन तुमसे कितने किए उन्होंने हैं भवपार ।
वेद-प्रतिज्ञाकी रक्षाको रुक्मवर्ण द्विज-सुत सुकुमार ॥
भाई हैं अवधूत सङ्गमें, नाम महाप्रभुका लेकर ।
जो सब नदियाके लोगोंको करते हैं उन्मत्त उधर ॥
नन्द-सुत और चैतन्य गोसाईं अपना नाम दान करके ।
सभी जगत्को तार रहे हैं अहंकार-बाधा हरके ॥
तुमभी जाओ परित्राणको पानेको"—मैं यह सुनकर ।
चरण-शरणमें आया हूँ मैं, नाथ ! कृपा करिये मुझपर ॥
"भक्ति-विनोद" कहानी अपनी रो रो कर प्रभु ! कहता है ।
सेवा-भक्ति आपकी केवल करना चितमें चाहता है ॥

जन्माष्टमी

[श्री शङ्करलाल चतुर्वेदी बी० ए० साहित्य रत्न]

जाको गुन गावत गनेश शेष नारदादि,
सारद न पावे पार करती निराज है ।
शङ्कर लवलीन है जाकी ललित लीला पै,
देखिकें प्रताप जाको मोह्यो सुरराज है ॥
बार बार वारें ब्रजवारी प्रान जासु ऊपर,
राधा मुख चकोर कौ, कलित निशिराज है ।
जहँ तहँ मनाओ रे हर्ष, नरनारी सब,
प्यारे श्रीकृष्ण को जन्म दिन आज है ॥

प्रश्नोत्तर

(*श्रीचैतन्यदेव और श्रीकल्किदेव*)

[देहरादूनसे श्रीयुत प्रेमदासजी नामक श्रीभागवत-पत्रिकाके श्रद्धालु पाठकने पत्रद्वारा एक प्रश्न किया है और उसके समाधानके लिए प्रार्थनाकी है। आशा है कि यह प्रश्नोत्तर पाठकोंके लिए लाभप्रद होगा, अतः उसे श्रीपत्रिकामें प्रकाशित किया जा रहा है।]

प्रश्न—श्रीभागवत पत्रिकाके संख्या १ पृष्ठ १० में लिखा गया है—"यह कलियुग साधारण कलियुग नहीं है पिछले महात्माओंने इसको "धन्य कलि" नामसे सम्बोधित किया है।—"धन्य कलिमें" कल्कि-अवतार-की आवश्यकता नहीं होती है।" तथा संख्या २, पृष्ठ ४६ में "श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुका संकीर्त्तन आन्दोलन" नामक लेखमें ठीक उसके विपरीत लिखा गया है—"साधुओंके कर्म विमोचन तथा धर्मकी रक्षाके लिए चराचर जगत् गुरु सर्व अन्तर्यामी जगदीश्वर श्रीहरिका प्रादुर्भाव होता है। अतः संभल नामक प्रसिद्ध नगरमें विष्णुनामक उत्तम ब्राह्मणके गृहमें भगवान् कल्किदेवका अवतार होगा।"—इन दोनोंमें कौनसी बात विश्वसनीय है अथवा इन परस्पर विरुद्ध कथनोंका क्या समाधान हो सकता है ?

उत्तर—आपका प्रश्न बहुत ही सुन्दर हुआ है। सर्वप्रथम यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि भक्त-भागवत, ग्रन्थ-भागवत और भगवान्- इन तीनों में भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणापाटव—इन चारों दोषोंका सर्वथा अभाव होता है। किसी वस्तु के सम्बन्धमें मिथ्या ज्ञानको भ्रम कहते हैं, एक उक्ति या वस्तुको अन्य प्रकारसे उपलब्ध करने, सुनने या कहनेको प्रमाद कहते हैं, ठगनेकी इच्छाको विप्रलिप्सा तथा इन्द्रियोंकी अपटुता या अक्षमताको करणापाटव कहते हैं। जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर नित्य भगवत्-पार्षद या भक्त-भागवत हैं। दूसरी तरफ "श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु का संकीर्त्तन-आन्दोलन" नामक लेख माननीय लेखक द्वारा श्रीमद्भागवतके आधारपर लिखा गया है। विशेष कर कलियुग की अवस्था और कल्कि-देवके आविर्भावके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतके श्लोकोंका ही अविकल अनुवाद लिखा गया है। अतः भक्तभागवत श्रील भक्तिविनोद ठाकुर और ग्रन्थ-भागवतमें भ्रम या अविश्वासका प्रश्न ही नहीं उठ सकता।

अब प्रश्न उठता है—दोनों बातें एक ही साथ कैसे ठीक हो सकती हैं अथवा इन परस्पर विरोधी कथनों का सामञ्जस्य किस प्रकार किया जाय ? इसका बहुत ही सरल समाधान है—'श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुका संकीर्त्तन-आन्दोलन' लेखमें अथवा श्रीमद्-भागवतमें साधारण कलियुगमें होने वाली अव-स्थाओंका वर्णन किया गया है और वहाँ उनमें कहा गया है कि कलिकालमें जब वैसी बुरी परिस्थिति उपस्थिति होती है या होगी तो श्रीकल्किदेवका आविर्भाव होता है—यही साधारण नियम है।

किन्तु बात ऐसी है कि सभी द्वापरोंमें कृष्णका और सभी कलियुगोंमें श्रीचैतन्यदेवका आविर्भाव नहीं होता। ७१ चतुर्युगोंका एक मन्वन्तर और १४ मन्वन्तरोंका ब्रह्माका एक दिन होता है। ब्रह्माके इस एकदिनमें अवतारी पूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण एकबार ही इस धरापर अवतीर्ण होते हैं—सप्तम मन्वन्तरके २८ वें चतुर्युगमें द्वापरके शेष-भागमें और ठीक इसीके बाद वाले कलियुगमें ही—ब्रह्माके एक दिनमें केवल एक बार ही—वही अन्तः कृष्णो बहिर्गौरः (स्कन्दपुराण) अवतारी पूर्णभगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु जगतमें जीवोंको कृष्णनाम और कृष्णप्रेम प्रदान करनेके लिए आविर्भूत होते हैं। यद्यपि प्रत्येक कलियुग दोषोंका समुद्र होनेपर भी इसमें नाम-भजनके द्वारा ही

सर्वार्थकी सिद्धि होती है, इसी लिए शास्त्रोंमें ['यत्र संकीर्त्तनेनैव सर्वस्वार्थोऽभिलभ्यते' (भा० ११।५।३६), 'कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परंव्रजेत्' (भा० १२।३।५१ आदि] कलिकी महिमाका खूबही वर्णन किया गया है तथापि जिस कलिमें स्वयं-भगवान श्रीचैतन्य-देव श्रीहरिनामामृत प्रदान कर जगत्-जीवको धन्य करते हैं उसी विशेष कलिको ही उनके आविर्भावके लिए ही 'धन्य कलि' कहा गया है और इनके आवि-र्भावके प्रभावके कारण ही धन्यकलिमें कल्कि अवतारकी आवश्यकता नहीं होती। श्रीलवृन्दावनदास ठाकुरने "चैतन्य-भागवत"में जोरदार शब्दोंमें लिख डाला है-

"उच्च संकीर्त्तन ताते करिला प्रचार।
स्थिर चर जीवेर खण्डाइला संसार॥
चैतन्यावतारे बहे प्रेमामृत वन्या।
सब जीव प्रेमे भासे "पृथ्वी हैल धन्या"॥

—अर्थात् जगत्-जीवोंकी दुर्वस्था पर विचार कर श्रीचैतन्यदेवने उच्च-संकीर्त्तनका प्रचार कर स्थावर और जंगम सभी प्राणियोंकी (जीवोंकी) संसार-वासनाका मूलतः छेदन कर दिया। इस तरह उन्होंने कृष्ण-प्रेमकी एक ऐसी धारा बहाई जिसमें सारा जगत् ही डूब रहा है और इसलिए पृथ्वी धन्य हो गयी है। फिर इसके सार्वत्रिक प्रचारके लिए तो श्री-मन्महाप्रभुने ही घोषणा की है—

"पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम॥"
(चैतन्यभागवत)

आज महाप्रभुकी यह वाणी सर्वत्र ही फूलती-फलती नजर आरही है। क्रमशः सभी सम्प्रदायोंमें, सभी देशोंमें, सभी जातियोंमें, सभी वर्गोंमें बिना भेद-भावसे हरिनाम-संकीर्त्तनका प्रचार होरहा है। एक दिन आने वाला है जब भागवत धर्म-श्रीहरिसंकीर्त्तन सर्वत्र-सुदूर विश्वके कोने-कोनेमें प्रसार लाभकर अपनी मंगलमयी ध्वनिसे जीवोंकी संसार वासनाको ध्वंसकर उन्हें कृष्ण-प्रेममें सराबोर कर देगा। श्रीचैत-न्यदेवने एकभी प्राणीकी हत्या न की बल्कि उनकी आसुरिकता और दुष्कृतियोंको कृष्ण-प्रेमकी बाढ़ में बहा दिया। यही बाढ़ क्रमशः जगत्में कलि-युगके साथ-साथ अग्रसर हो रही है। फिर कल्किदेवके आनेकी आवश्यकता ही नहीं होती। उनका अविर्भाव धर्मरक्षा और असुरोंके दलनके लिए ही तो होता है, वह कार्य जब पहले ही समाधान हो जाता है तो फिर वे क्यों आवेंगे।

दूसरी बात यह है कि भगवान्के बहुविध अवतार होते हैं जिनमें शक्त्यावेश अवतार भी एक है। महत जीवोंमें जब भगवत् शक्ति-विशेषका आवेश होता है तो उन्हें शक्त्यावेशावतार कहते हैं। पृथु, परशुराम, कल्कि, नारद, व्यास आदि शक्त्यावेशावतार हैं। जब अवतारी पूर्णभगवान् अवतीर्ण होते हैं तब नारायण, चतुर्व्यूह, लीलावतार, युगावतार, मन्वन्त-रावतार और शक्त्यावेशावतार आदि सभीकी उनके अङ्गमें स्थिति रहती है तथा उन्हीं अवतारी द्वाराही युगधर्म आदि सभी कार्योंका सम्पादन होता है। अतएव जिस कलियुगमें अवतारी पुरुष सर्वशक्ति समन्वित परमकारुणिक प्रेममूर्त्ति श्रीचैतन्यदेवका आविर्भाव होता है उसमें कल्किदेवके पृथक आवि-र्भावकी आवश्यकता नहीं रह जाती--यही हमारे पूर्व-पूर्व आचार्योंका अभिमत और शास्त्रोंका सिद्धान्त है। अतः श्रीचैतन्य देवके आविर्भावके लिये ही वर्तमान कलियुगको "धन्य कलि" कहा गया है,इसमें कल्किदेव जैसे शक्त्यावेशावतारके आविर्भावकी आवश्यकता न होगी। शास्त्रोंमें अन्यान्य सभी साधारण कलियुगोंके लिये ही कल्कि अवतार का वर्णन किया गया है। इसी सिद्धान्तकी स्थापनाके लिये ही "श्रीचैतन्य महाप्रभुका संकीर्त्तन-आन्दोलन" लेख लेखक द्वारा लिखा गया है। अभी केवल उसकी भूमिका चल रही है। आशा की जाती है कि लेखक द्वारा इसमें श्रीमन्महाप्रभुके संकीर्त्तन धर्मका वैशिष्ट्य क्रमशः प्रकाशित होगा।

—सम्पादक

क्या करूँ ?

यद्यपि सबके सामने यह प्रश्न नहीं उठता, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि प्रायः यह जानने की इच्छा होती है—"तो अब क्या करना चाहिये ? हाँ, हर समय हर प्रकारसे यह प्रश्न उठनेका अवसर मिलता है। इस प्रश्नको हम दो तरहसे विचार कर सकते हैं-

(१) सर्वसाधारण—मनुष्यमात्रके लिये, जीवन भरके लिये।

(२) विशेष व्यक्तिके लिये किसी विशेष अवसर पर।

यहाँ मेरी यह इच्छा नहीं है कि मैं इस दूसरे पहलू पर कुछ ज्यादा कहूँ, लेकिन साधारणतः उसके बारेमें कुछ परिचय देना अप्रासङ्गिक (Irrelevant) न होगा। यद्यपि यह किसीको भी अपरिचित नहीं, फिर भी इसके अचानक सामने आनेका इतना जबरदस्त और तेज प्रभाव होता है कि यह आदमीको कभी कभी बहुत परेशानीमें डाल देता है और वह आदमी न जाने कहाँ-से-कहाँ उड़ जाता है-न जाने कहाँ-कहाँ गहरा चक्कर खाता फिरता है।

उदाहरणके लिये—एक कॉलेजका लड़का परीक्षामें दाखिल हुआ, परीक्षा हो गयी; विचार यह था कि इन्टर पासकर बी० ए० के लिये तैयार हो जायगा। पासभी हुआ, किन्तु डिविजन (Division) थर्ड (III) मिला और बी० ए० में भर्ती होनेके लिये 'सीट' नहीं मिली। वह सोचने लगा—"क्या करूँ ?" दूसरी एक लड़की जिसने इन्टर तो अच्छी तरहसे पास करलिया और जिसके मनमें यह भारी इच्छा थी कि एम० ए० तक पढ़ेगी। इसी अवसर पर उसकी शादी करदी गयी। ससुरालके आदमी कुछ रुढ़िवादी (Conservative) प्रकृतिके थे। हुकुम हुआ—"नहीं, और पढ़नेकी जरूरत नहीं है, इस घरकी ऐसी ही रीति है।" लड़की सोचती है—क्या हो गया ? "अब क्या करूँ ?" लेकिन वह करही क्या सकती है ? सौदागर व्यापारमें बहुत कुछ आशा करता है लेकिन अचानक भाव गिर जाता है, तो वही "क्या करूँ ?" कोई आदमी शादीमें शामिल होनेके लिये जारहा है, स्टेशन पर पहुँचनेके पहलेही गाड़ी छूट जाती है तो फिर वही "क्या करूँ ?" इसी प्रकार अगर हम ध्यानसे देखें तो यह "क्या करूँ ?" हमारे सामने तरह-तरहसे समय असमय बिना सूचना दिये ही आजाता है और हमें ऐसी परिस्थितिमें डालदेता है कि हमारी सारी चिन्ता उसीको सुलझानेमें लग जाती है। हम एक डवाँडोल परिस्थितिमें पड़कर चक्कर खाते रहते हैं। मैं चाहता हूँ कि हर आदमी यह अनुभव करे कि यह प्रश्न कितना आगन्तुक और आकस्मिक है। यहाँ पर शायद सभी एकमत होंगे कि हाँ ! बात तो ऐसी ही है। लेकिन इसका समाधान ? यह उलझन किस तरहसे सुलझायी जा सकती है—यह बतानेकी आवश्यकता है। इसका उत्तर साधारण बुद्धिसे देनेके लिये नाना प्रकारके उपाय बतलाए जा सकते हैं, तथा उन सबका मूल एक वही है—उसी परिस्थितिके अनुसार या समयानुकूल अपना कर्त्तव्य किया जाय और उसके बारेमें जानकारोंसे सलाह ली जाय। ये सभी संसारिक विषय हैं और इनमें हजारों सलाहकार मिल सकते हैं। लेकिन ऐसी सलाह देनेकी न तो मेरी इच्छा है और न उद्देश्य ही है।

मैं बात कुछ और कहना चाहता हूँ जिसपर अच्छी तरह ध्यान देना चाहिये। मैं देखना चाहता हूँ कि सभी अपने जीवनमें उसका प्रयोग करें (Have a practical side) और उससे फायदा उठावें, जिससे यह मालूम कर सकते हैं कि बात सच्ची है या झूठी ?

इस प्रश्नके दूसरे पहलू का हल करनेके लिये हमें नं० १ का विचार करना आवश्यक है। वास्तवमें अगर हम इसका पहला पहलू अच्छी तरह समझे और काममें लावें तो दूसरा पहलू अति आसानीसे हल हो जाता है और हरएक व्यक्तिका जीवन सफल हो सकता है।

व्यापकरूपसे इस प्रश्नका उत्तर जाननेके लिये एक और प्रश्न सामने आ जाता है और वह है,—"मैं कौन हूँ ?" इसका जवाब तो हर आदमी दे सकता है। कोई कहेगा "मैं ब्राह्मण हूँ," कोई कहेगा "मैं क्षत्रिय हूँ" और इस तरहसे चारों वर्णोंसे शुरू करके करीब-करीब चार हजार या चार लाख अथवा न जाने कितने ही जवाब मिलेंगे। फिर "मैं मंत्रीजी हूँ," और "मैं चेयरमैन साहब हूँ" और "अजी, मैं तो ऐसमैनों का नेता हूँ" आदि जवाब शुमारमें लावें तो फिर जवाबों का ताँता बँध जायगा। फिर "क्या करूँ" का जवाब भी उसीके अनुसार न जाने कितने ही हो जाएँगे जिसके लिए एक छोटासा विधान का ग्रन्थ (Volume of constitution) बन जायगा। इस तरह समस्या जटिल की जटिल ही रह जायगी। लेकिन मेरी इतनी गुंजायश कहाँ कि इतनी लम्बी चौड़ी बातके चक्करमें फसूँ—और अगर फँस भी जाऊँ तो फिर उससे निकलना क्या कोई आसन बात है ? इसलिए एक छोटासा सरल जवाब ढूँढ़ निकालना ठीक होगा।

यह कहा जा सकता है कि मैं एक आदमी हूँ। लेकिन फिर भी प्रश्नोंका ढेर लग जायगा—आदमी किसको कहते हैं ? उसका लक्षण क्या है ? वह क्या करता है ? कैसा है ? तो फिर भी उलझन ही उलझन। इसलिए यह जवाब भी छोड़ देना ही अच्छा रहेगा।

अंतमें दार्शनिक भाषासे हम कह सकते हैं कि हम जीव हैं। यहाँ पर एक छोटीसी बात मैं कहना चाहता हूँ और वह यह है कि मैं शास्त्र के प्रमाणादि श्लोक उपस्थिति करना नहीं चाहता हूँ क्योंकि मुझमें न तो इतना पाण्डित्य ही है और न अधिकार। जीव के विषयमें हम सुनते हैं और मानते भी हैं कि उसके साथ परमात्माका किसी न किसी तरहका संबन्ध है। एक भारतवासी के लिए जीव और परमात्मा नये शब्द नहीं हैं। प्रायः सभी इन दो शब्दों का नित्य व्यवहार करते हैं। जीवात्माका परमात्माके साथ अथवा जीव का ब्रह्मके साथ क्या संबंध है—इन उच्च सिद्धान्तों की बातोंको कहनेकी न तो मेरी शक्ति है और न अधिकार, लेकिन एक बात हम जानते हैं और हर समय अनुभव भी करते हैं कि जीव किसीके आधीन है। वह इच्छानुसार चल नहीं सकता, न जाने कौन उसको शासन में रखता है और उसकी इच्छानुसार चलना पड़ता है। यह सभी जानते हैं कि हर काम किसीके अपने मनके अनुसार नहीं होता। करते करते सब हार जाते हैं, लेकिन वह बात नहीं होती जो मन चाहता है। इसलिए इस बातमें संदेह नहीं है कि हम लोगोंको चलाने वाला कोई दूसरा अवश्य है और वही सर्व नियन्ता है। खोलकर हम कह सकते हैं कि हम सब उसके दास हैं—दो एक दिनके लिए नहीं सदाके लिए हैं। एक ही जन्मका नहीं, जन्म-जन्मान्तरों के। सर्व नियन्ताका आदर्श हम गीता में स्पष्ट देखते हैं और देखकर दंग रह जाते हैं। डर भी लगता है लेकिन फिर भूल जाते हैं। अर्जुन जैसा जबरदस्त आदमी जिसने अपने विचार-बलसे युद्ध नहीं करनेका निश्चय कर लिया था, अंत में घुटने टेक कर कहता है। किनसे ? और क्या ?—उसी सर्व-नियंता श्रीकृष्णसे। और क्या ?—"तेरा कहना करूँगा।" कहां गया वह सुदृढ़ विचार और कहाँ गया वह निश्चय ? तो बात यह है कि वहाँ पर किसीकी कुछ भी नहीं चलती।

अब इन सिद्धान्तोंका निचोड़ यह निकलता है कि जीव नित्य ही श्रीकृष्ण भगवान्का दास है। कोई अज्ञानतावश इसे नहीं जान पाता अथवा कभी कुछ ज्ञानसे जानकर भी भूल जाता है लेकिन वह संबंध लगा हुआ है। उसको सदा प्राप्त करना ही मूल-ज्ञान अथवा स्वरूप-ज्ञान है और उसीसे आनंद मिलता है। उसे भूल जाना ही विपत्तिमें पड़ना और शोकसागरमें डूबना है। इसी भूलसे ही "क्या करूँ ?" प्रश्नका दूसरा पहलू उठता है। यहाँपर कोई यह नहीं समझे कि दास शब्दका अर्थ जैसा आज-कलके कारखानेका नौकर या पुराने-जमानेके क्रीतदास से (Slave) है। भगवान्का दास तो कुछ और ही है, परन्तु उसका विचार यहाँ करना नहीं है।

अब यह स्थिर हो चुका है कि "मैं कौन हूँ ?"-मैं श्रीकृष्णका सदाके लिए दास हूँ। यह "दास" पद या

शब्द हेय नहीं, अधिकन्तु बड़ा ही मधुर और रोचक है। दासका काम तो सेवा करना अर्थात् "दास" को हम सेवक कह सकते हैं। सेवा क्या है ?—तदनुकूल आचरण करना ही सेवा अर्थात् श्रीकृष्णकी इच्छानुसार करना,अपनी इच्छाको उसीकी इच्छाके पूर्ण अनुगत कर देना। यहाँ पर "क्या करूँ ?" का जवाब मिल जाता है। जब आदमी यह जान लेता है कि उसकी हुकुमत नहीं है और न चलती है तो अन्तमें श्रीभगवानकी ही शरण लेनी पड़ती है। फिर वह यह स्थिर निश्चय करता है कि उन्हींकी सेवामें ही अपना कल्याण और शान्ति है और तदनुसार उन्हींके शरणागत हो जाता है तो सब समस्या खतम हो जाती है। उसका जीवन बन जाता है—वह आगे चल पड़ता है। उसके बाद जो 'क्या करूँ ?' प्रश्नका दूसरा पहलू आकर सामने खड़ा हो जाता है तो उसका समाधान उसी समय हो जाता है। इसमें तिलभर भी संदेहका अवसर नहीं है। कोई परीक्षा करके देखे तो सही ! मैं तो यही कहूँगा कि आत्मनिवेदन होने पर अपना विशुद्ध अप्राकृत-स्वरूप-कृष्णदास्य प्रकाशित हो जाता है जिससे वह निरन्तर कृष्णकी सेवा करता है। कृष्णकी इच्छा ही उसकी इच्छा होती है। वह 'करूँ' क्रियाका स्वतंत्र कर्त्ता नहीं रह जाता है। उसमें परतंत्र कर्तृत्व अर्थात् भगवान्‌की सेवा करनेकी इच्छा नित्यकालके लिए प्रस्फुटित हो जाती है एवं मायिक क्रिया (स्वतंत्र-कर्तृत्व) बदल जाती है। अपना स्वरूप ढूढ़ो और उसीमें स्थित हो जाओ तो सब ठीक हो जायेगा। लेकिन यह काम इतना सहज नहीं है जैसा मेरे कहने से मालूम पड़ता है। इसके लिए हार्दिक इच्छा और तदनुसार पूर्ण प्रयत्नकी आवश्यकता है।

हाँ ! एक बात रह जाती है कि श्रीकृष्णकी शरण में किस तरहसे कोई आ सकता है ? इसका उत्तर यह है कि उसके लिए पहले किसी योग्य व्यक्तिके शरण में जाना चाहिए और फिर उनके आनुगत्यमें रह कर अपना उद्देश्य पूरा करनेका प्रयत्न करता रहे। जो निपुण कार्यकारी सज्जनोंका संग ढूढ़ता है वह पाता भी है। लेकिन इच्छा होनी चाहिए।

—राधेबाबा

प्रचार-प्रसंग

१—श्रीबलदेवजीका आविर्भाव उत्सव

श्रीबलदेवजीके आविर्भाव तिथिके अवसरपर श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें गत २६ श्रीधर, १७ श्रावण ३ अगस्त, बुधवार पूर्णिमाको विशेषरूपसे श्रीमद्भागवत् पाठ और संकीर्त्तनका अनुष्ठान हुआ। भक्तवृन्द उसदिन उपवास रहे तथा दूसरे दिन पारणके बाद अनुष्ठानकी समाप्ति हुई।

२—श्रीश्रीजन्माष्टमीका व्रतोपवास और श्रीनन्दोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके शाखामठ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा तथा अन्यान्य शाखा-मठोंमें गत ८ हृषिकेश, २५ भाद्र, ११ अगस्त, बृहस्पतिवारको श्रीश्रीजन्माष्टमी व्रतोपवासका अनुष्ठान खूब समारोहके साथ मनाया गया। उसदिन भक्तवृन्दोंने यथाविधि निर्जला उपवास रहकर सर्वदा कृष्णलीलादिका श्रवण-कीर्त्तन किया। श्रीमद्भागवतसे श्रीकृष्ण-जन्मलीला-प्रसङ्गकी विशद आलोचना की गई। ठीक आधी रातके समय विशेष समारोहके साथ संकीर्त्तनके बीच विविध उपचारोंसे श्रीश्रीकृष्णका अर्च्चन-पूजन तथा भोग-राग संपादित हुआ। दूसरे दिन मध्याह्नमें श्रीनन्दोत्सवके उपलक्ष्यमें भक्त-मण्डलीको विविध प्रकारका विचित्र महाप्रसाद वितरण किया गया।

—प्रकाशक

जैव-धर्म

(गत संख्या २, पृष्ठ ४५ के आगे)

द्वितीय अध्याय

जीवका नित्यधर्म शुद्ध और सनातन है

दूसरे दिन प्रातः काल प्रेमदास बाबाजी अपने व्रज-भावमें डूब रहे थे अतः सन्यासी महाशयको उनसे कोई बात पूछनेका अवसर नहीं मिला। दोपहरमें 'मधुकरी' करके दोनों ही श्रीमाधवी-मालती मण्डपमें बैठे।

परमहंस बाबाजीने कृपा करके कहा—"हे भक्त प्रवर! आपने धर्म-विषय की मीमांसा सुनकर क्या स्थिर किया?"

यह बात सुनकर संन्यासीजीने परम आनन्दके साथ फिर प्रश्न किया—"प्रभो! जीव यदि अणु पदार्थ है, तो उसका नित्य-धर्म कैसे पूर्ण और शुद्ध हो सकता है? जीवके गठनके साथ यदि उसके धर्मका भी गठन होता है,तो धर्म कैसे सनातन हो सकता है?"

इन दोनों प्रश्नोंको सुनकर श्रीशचीनन्दनके चरणों का ध्यान करते हुए परमहंस बाबाजी मुसकराते हुए कहने लगे—"महाशयजी! जीव अणु पदार्थ है,किन्तु उसका धर्म पूर्ण, शुद्ध और सनातन है। अणुत्व केवल वस्तुका परिचय है। बृहत् वस्तु एकमात्र परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र हैं। जीव-समूह उनके अनन्त परमाणु हैं। अखण्ड अग्निसे जिस प्रकार चिनगारियाँ निकला करती हैं, वैसे ही अखण्ड चैतन्यस्वरूप कृष्णसे ये जीव भी निकलते हैं। अग्निकी एक-एक चिनगारी जैसे पूर्ण अग्नि-शक्तिको धारण करती है, हरेक जीव भी उसी तरह चैतन्यके पूर्ण-धर्मकी विकाश भूमि होनेमें समर्थ है। एक चिनगारी जैसे जलानेकी सामग्री पाकर क्रमशः महान अग्निका परिचय देकर समग्र जगत्को जला डालनेमें समर्थ होती है, वैसे ही एक जीव भी प्रेमके प्रकृत विषय श्रीकृष्णचन्द्रको पाकर प्रेमकी महाबाढ़ लानेमें समर्थ हो सकता है। जबतक अपने धर्मके यथार्थ विषयको वह स्पर्श नहीं करता, तबतक उस पूर्ण धर्मका सहज विकाश दिखानेमें अणु-चैतन्य-स्वरूप जीव असमर्थ होकर प्रकाश पाता है। वास्तवमें विषयके संयोगमें ही धर्मका परिचय मिलता है।

"जीवका नित्य-धर्म क्या है?—इसका अच्छी तरह अनुसन्धान कीजिए। प्रेम ही जीवका नित्यधर्म है। जीव अजड़ अर्थात् जड़से अतीत वस्तु है। चैतन्य ही इसका गठन है। प्रेम ही इसका धर्म है। कृष्णका दास्य ही वह विमल प्रेम है। अतएव कृष्ण-दास्यरूप प्रेम ही जीवका स्वरूप-धर्म है।

"जीवकी दो अवस्थाएँ हैं-शुद्धावस्था और बद्धा-वस्था। शुद्ध अवस्थामें जीव केवल चिन्मय है। उस समय उसका जड़से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। शुद्ध अवस्थामें भी जीव अणु पदार्थ है। उसी अणुत्वके कारण जीवके अवस्थान्तर प्राप्त होनेकी संभावना होती है। बृहत् चैतन्य स्वरूप कृष्णका स्वभावतः अवस्थान्तर नहीं है। वे वस्तुतः बृहत्, पूर्ण, शुद्ध और सनातन हैं। जीव वस्तुतः अणु, खण्ड, और अशुद्ध होनेके योग्य और अर्वाचीन है, किन्तु धर्मतः वह बृहद्, अखण्ड, शुद्ध और सनातन है। जीव जबतक शुद्ध है तभीतक उसके स्वधर्मका विमल परिचय मिलता है। जीव जब मायाके सम्बन्धसे अशुद्ध होता है तभी स्वधर्ममें विकार होनेके कारण वह अविशुद्ध, अना-श्रित और सुख-दुःखसे पिसा हुआ रहता है। जीवको कृष्णके दास्यभावकी विस्मृति होतेही संसारदशा उपस्थित होती है।

"जीव जबतक शुद्ध रहता है तभीतक उसे स्वधर्म का अभिमान रहता है। वह अपनेको कृष्णका दास

समझकर अभिमान करता है। किन्तु मायाके संबंधसे अशुद्ध होते ही वह अभिमान संकुचित होकर भिन्न-भिन्न आकार धारण करता है। मायाके सम्बन्धसे जीवका शुद्ध-स्वरूप लिंगदेह और स्थूलदेहसे आवृत होजाता है। तब लिङ्ग शरीरका एक अलग अभिमान उदित होता है। वही अभिमान फिर स्थूलदेहके अभिमानमें मिलकर एक तृतीय अभिमानका रूप धारण करता है। शुद्ध-शरीरमें जीव केवल कृष्णका दास है। लिङ्गशरीर में जीव अपनेको स्वकर्म फलका भोक्ता समझने लगता है। उस समय कृष्ण-दास्यका अभिमान लिङ्गदेहके अभिमानसे ढका रहता है। फिर स्थूलदेह प्राप्त करके—'मैं ब्राह्मण हूँ, मैं राजा हूँ, मैं गरीब हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं रोग-शोकके द्वारा अभिभूत हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं अमुकका स्वामी हूँ'—इस प्रकार तरह-तरहके स्थूलाभिमानके साथ वह अपना परिचय देता है। (क्रमशः)

श्रीव्रजमण्डलकी परिक्रमा और कार्त्तिक-व्रतका

निमन्त्रण-पत्र

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कंसटीला, मथुरा (उ०प्र०)
३ अगस्त १९५५

सादर सम्भाषणपूर्वक निवेदन—

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने इस वर्ष श्रीश्रीमथुराधाममें कार्त्तिक-व्रत, उर्ज्जव्रत या दामोदर-व्रत पालनके उपलक्ष्यमें श्रीव्रजमण्डल की परिक्रमाका विराट आयोजन किया है। आगामी १३ कार्त्तिक, ३१ अक्टूबर सोमवारसे १३ अग्रहायण (मार्गशीर्ष), २९ नवम्बर १९५५, मङ्गलवार पर्यन्त नियमसेवा और परिक्रमाकी जायगी। परिक्रमा और नियमसेवाके साथ-साथ प्रत्येक दिन प्रवचन, कीर्त्तन, वक्तृता, इष्टगोष्ठी और विग्रह-सेवा आदि विविध भक्तिके अङ्गोंका पालन किया जायगा। बङ्गदेशके यात्रियोंके लिये कलकत्तेसे एक रिजर्व ट्रेन छूटेगी जो यात्रियोंको रास्तेमें अनेक तीर्थोंका दर्शन कराती हुई यथा समय मथुरामें पहुँचेगी।

हम धर्म-प्राण सज्जनोंको भक्तिके इस शुद्ध अनुष्ठानमें बन्धु-बांधवोंके साथ योगदान कर इस अपूर्व सुयोगको ग्रहण करनेके लिये अनुरोध करते हैं। विशेष जानकारीके लिये "सम्पादक, श्रीभागत-पत्रिका" के निकट पत्र लिखें।

निवेदक—

सभ्यवृन्द,
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति।